सचित्र, साहित्यक, सामाजिक, सांस्कृतिक पत्रिका

ॐ

वशिष्ट

वर्ष १ श्रावण २०२४ जुलाई १९६७ अंक ७

सम्पादक
किशोरचन्द
भारद्वाज

मुख्य प्रबन्धक
सोमनाथ तेजपाल
फोन : २६२६३३

प्रथम दानवीर देवी श्रीमती राज कौशल्या



धर्मपत्नी स्वर्गीय श्री सन्त मनोहरलाल जी जिन्होंने १००१ रु० "ब्राह्मण भवन" के लिए दिये।

शुल्क
११ रु०
५ रु०

कार्यालय :-
१०४-ए,
कमला नगर,
दिल्ली-७

कास

अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष

आये दिन हर एक मञ्च पर अंतर्राष्ट्रीय मञ्च पर अथवा राष्ट्रीय मञ्च पर धार्मिक अथवा सामाजिक मञ्च पर, आर्थिक, वैज्ञानिक अथवा राजनीतिक मञ्च पर जहाँ भी दृष्टि पहुँचे हर एक मञ्च पर कुछ न कुछ खेल खेले जा रहे दृष्टि गोचर होते हैं—और जहाँ भी सुनो अथवा पढ़ो प्रगति की तालियों से आकाश गूँज उठता है। करतल ध्वनि व सुव्यवस्थित प्रदर्शनी सफलता अथवा प्रगति के ही प्रतीक होते हुये यही सिद्ध करते हैं कि हर मञ्च पर चतुर्मुख प्रगति हो रही है। परन्तु तटस्थ होकर वस्तु स्थिति देखने वाले को यह एक ढोंग ही नजर आता है, वास्तविक जिज्ञासु का एक ही सात्विक और जिज्ञासा युक्त मर्मभेदि स्पर्श इस कृत्रिम अट्टालिका को धराशायी कर देता है दूर से सुन्दर सुगन्धित पुष्पों से सुसज्जित उद्यान एक बीहड़ वीरान नजर आने लग जाता है : क्यों ? मानवता के कोमल व उज्वल शरीर पर शताब्दियों से पाशविक वृत्तियों व अनुभूतियों का चोला चढ़ता आया है और अब वह चोला इतना मोटा हो गया है कि अन्तः स्थित मानव टटोलने पर भी कहीं नहीं मिलता—मिलता क्या है ? बे-सिर पैर के एक नर पिशाच।

साधारण जन जीवन विश्व भर में, आद्योपान्त, जन्म से मृत्यु पर्यन्त कृत्रिमता के आवरण से आच्छादित बड़े नगरों व शहरों से बहुत दूर गांवों, छोटे देहातों व पहाड़ी स्थानों में मानव कहलाने का साहस कर सकता है नागरिक कृत्रिमता व उद्दंडता के उपद्रव तो उस तक पहुँचते ही हैं और कुछ अंश तक प्रभावित भी होता है। परन्तु उनकी उपेक्षा करता हुआ अपना मानवी जीवन संग्राम पूरा कर ही लेता है।

आज की मानवता आज के ढोंगी विश्व नेताओं द्वारा बार-बार आदर्शात्मक वचनों को सुनती हुई ऊब चुकी है, मैं मानता हूँ कि स्वार्थ की भावना प्रत्येक व्यक्ति के अंदर प्रबल होती है और उसी स्वार्थ की पूर्ति के हेतु सामूहिक स्वार्थ में भी योग देता है आज मानव ऐसी परिस्थिति में है कि वह न अपने को समझ रहा है और न दूसरे को समझने का प्रयत्न करता है। प्रायः सभी सम्पन्न व्यक्ति उपरिभाव से पूर्ण रहने पर भी अपने संकीर्ण अहम् में डूबा रहने के कारण अपने भीतर एक अनंत हाहाकार भरे अस्पष्ट अभाव का अनुभव कर रहा है और दूसरी तरफ अकिंचन व्यक्ति सम्पूर्ण जीवन को ही अभावमय, अर्थहीन और अनावश्यक मानकर यथा सामर्थ्य जीवन भार को किसी तरह ढोता चला आता है और मध्यम वर्ग जीवन और मृत्यु के झूले झूलते हुए परस्पर विरोधी परिस्थितियों के क्रूर परिहास का शिकार बन रहे हैं।

सर्वत्रभय, संशय, अनास्था और अविश्वास का राज्य है। सब कहीं ढोंग और झूठ का बोलबाला है, सब ओर जीवन और उसकी मान्यताएँ अरक्षित और अव्यवस्थित हैं, सब के मन के अणु बिखर कर छितरा गये हैं और विस्फोटक तत्वों से भरे पड़े हैं। सब लोग आत्म-रक्षा के एक अन्ध और शुतुर्मुर्गीय प्रवृत्ति से प्रेरित होकर सामूहिक जीवन के मृत ढांचे को सहारा बनाकर अपने को अतल में डूबने से बचाने की हास्यास्पद चेष्टा कर रहे हैं, इस मृत ढांचे को सचेत प्रयत्नों द्वारा विनष्ट करके उस स्थान पर नये जीवन से फड़फड़ाता हुआ एक नया ढांचा बनाने का रास्ता किसी को नहीं सूझता, किंकर्तव्यविमूढ़ वाली हालत है।

हर सुव्यवस्थित समाज सामाजिक बंधनों से युक्त तभी प्रगति कर सकता है जब उसकी मानुषी प्रवृत्तियों को विकास का समुचित वातावरण मिले,

व्यक्ति निर्भर है समाज पर, समाज निर्भर है देश की व्यवस्था पर और देश निर्भर है अंतर्राष्ट्रीय शालीनता पर परन्तु आज की फ्री वर्ल्ड का तो बाबा आदम ही निराला है।

मनुष्य अपने आप में एक पशु से किसी अवस्था में अच्छा नहीं यदि उसे सामाजिक विधान के बन्धनों से मुक्त रखा जाय, वह समाज जो नागरिक विधान से मुक्त होकर अपने छोटे से सामाजिक अधिकारों की पुष्टि पाकर नागरिक विधानों की अवहेलना करते हुए अपना व्यवहार स्थित करे नगर के लिये दुःखदायी बन जाता है और फिर वही नगर विशेष यदि देश के विधान को निरपेक्षित करता हुआ स्वतन्त्र रूप से विचरण करे तो वह देश के लिये घातक सिद्ध होता है और ठीक इसी प्रकार यदि देश अतर्राष्ट्रीय प्रतिबन्धों व मर्यादाओं को तिलाञ्जली देकर अपना गंतव्य स्थिर करे तो वह देश न केवल वि व-शान्ति ही भंग करता है अपितु आधुनिक अणु युग में जगत् विध्वंस का कारण बन जाता है। यही अंतर्राष्ट्रीय प्रतिबन्ध व मर्यादाएं मानवीय स्तर के द्योतक हैं, मानव विधान (International Conduct) राष्ट्रीय विधान, सामाजिक विधान, राजनीतिक विधान, धार्मिक विधानों की भी संकीर्णता से बहुत ऊपर हैं, अंतर्राष्ट्रीय या मानव विधान इन सब तत्वों की व अधिकारों की ठोस और सामञ्जस्यात्मक शक्ति एकत्रित कर जन जीवन में एक नयी भावना अथवा चेतना ला दे तो विश्व में शान्ति स्थापित हो सकती है। आज का विकृत मानव यथार्थ में मानव बन सकता है अन्यथा नहीं।

ऐसा नहीं कि ससार में महापुरुषों या बुद्धिमानों की कमी है या इस विषय पर गम्भीरता से विचार न किया गया हो। "League of Nations" बनी पर असफल रही आज राष्ट्र संघ बना है और सांसारिक विषमताओं से यथा शक्ति दो चार होता चला आ रहा है और कूटनीतिज्ञों की शतरंजी चालों से इसकी नैय्या भी समुद्र की गहराइयों में डांवाडोल हो रही है। ऐसा न हो कि यह भी उन्हीं चट्टानों से टकराकर चकना चूर हो जाय जिनसे "League of Nations" हुई थी, यह हमारी कामना है।

अन्तर्राष्ट्रीय नेताओं के मुखों से विश्व शान्ति, मानवीय स्वतन्त्रता और विश्व कल्याण के पक्ष में बड़ी सारगर्भित कविता भरी और आदर्शात्मक बातें प्रतिदिन सुनने को मिलती हैं पर जहाँ वास्तविकता का प्रश्न आता है वहाँ कोई भी अपना हठ-धर्म छोड़ने को नजर नहीं आता अर्थात् मानवता गौण होकर निर्जीव हो जाती है, संसार के मुट्ठी भर राजनीतिक नेताओं और अर्थ पतियों की मानसिक विकृति और अत्यन्त संकीर्ण स्वार्थों के कारण सारी मानवता को खून के आँसू रोने पड़ते हैं और इस पर दुखदायी स्थिति यह कि उन नीच स्वार्थों की सफाई में दुहाई दी जाती हैं। बुद्ध, ईसा, मुहम्मद व गांधी की उन महान आत्माओं की जिनके व्यापक रास्तों से भले ही किसी को मतभेद हो परन्तु जिनके अंतर की समुद्रवत गहराई से उमड़े हुए व्यापक विश्व प्रेम की सच्चाई और सहृदयता में किसी को क्षणमात्र भी संदेह नहीं हो सकता। यही कारण है कि आज की मानवता नरक के अन्धकारमय गर्त में दम तोड़ रही है, जन जीवन उत्तरोत्तर अधिक विकल, विश्रृङ्खल, दलित और शोषित होता चला जा रहा है।

आज आवश्यकता है कठोर यथार्थवादी उपायों और संगठित प्रयत्नों द्वारा जन जीवन को व्यवस्थित और संतुलित करने की, सामूहिक विषमताओं को दूर करने की और अंत में आज तक की सभी सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्थाओं में मूलगत सुधार द्वारा नई मानवता को एक नयी समचेतनावस्था की उपलब्धि की ओर ले जाने की।

महर्षि वेदव्यास

श्री विष्णु प्रभाकर

महर्षि वेदव्यास बहुत बड़े विद्वान और पण्डित थे। उनके समय से पहले ऋषि मुनि वेदों को याद करते थे। वेदव्यास जी ने पहली बार उनको लिखा और उनको चार भागों में बांटा। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। वेदों के अतिरिक्त उन्होंनेपुराणों की रचना भी की। एक शास्त्र भी उनकेन ाम से चलता है। उसका नाम है वेदान्त-शास्त्र।

जिस एक किताब के कारण उनको हम सबसे अधिक जानते हैं वह है महाभारत। महाभारत में कौरव-पाँडवों की कहानी है, वेदशास्त्र का ज्ञान है, विज्ञान की चर्चा है, पुराणों की कहानियाँ भी हैं। उस समय के समाज, धर्म और देश का पूरा इतिहास है। यही नहीं वेदव्यास और भी अनेक विद्याएँ जानते थे। एक स्थान पर बैठकर दूर-दूर की बातें सुन लेना, दूर-दूर तक क्या हो रहा है यह देख लेना यह भी वे जानते थे। कौरव और पाण्डवों में जब लड़ाई शुरू हुई तब संजय हस्तिनापुर में बैठे हुए ही कुरुक्षेत्र में हो रहे युद्ध की कहानी धृतराष्ट्र को सुनाया करते थे। यह विद्या वेदव्यास ने ही उनको सिखाई थी। नहीं मालूम यह बात सच है या झूठ, लेकिन आज विज्ञान ने इस बात को सच कर दिया है। हो सकता है तब भी विज्ञान इतना बढ़ा हुआ रहा हो। न रहा हो, लेकिन महाभारत के लिखने वाले ने ऐसी कल्पना तो की ही थी।

व्यासजी का जन्म महर्षि बशिष्ठ के कुल में हुआ था। बशिष्ठ जी के पुत्र थे शक्ति, शक्ति के पुत्र हुए पाराशर और पाराशर के पुत्र थे महर्षि वेदव्यास। इनकी माता का नाम सत्यवती था। आप वैसे तो सबको समान रूप से प्यार करते थे, लेकिन पाण्डवों पर उनकी बड़ी कृपा थी। वे जानते थे कि पाण्डव धर्मात्मा हैं। उनके कहने पर ही पाण्डव द्रोपदीस्वयवर में गये थे। उनके कहने पर ही युधिष्ठिर ने राजसूय-यज्ञ किया था। उनके कहने पर ही भीम, अर्जुन. नकुल और सहदेव चारों भाई चारों दिशाओं में राजाओं को जीतने गये थे। जिस समय पाण्डवों को बनवास हुआ तब व्यासजी ने ही उनकी सहायता की थी। जब गान्धारी अपने पुत्रों के मर जाने पर पाण्डवों को शाप देना चाहती थी, तब भी उन्होंने ही उसे ऐसा करने से रोका था।

युद्ध में पाण्डवों की जीत हुई, लेकिन यह जीत हार जैसी ही थी। युधिष्ठिर बहुत दुखी हुए। उन्होंने राजगद्दी पर बैठने से इन्कार कर दिया। तब भी व्यास जी ने आकर उन्हें नीति की कहानियाँ सुनायीं। धर्म से राज्य करने को कहा। कहा, 'आदमी को निराशवादी नहीं होना चाहिए, जो कुछ धर्म है, उसे पूरा करना चाहिए। तुम्हें धर्म से राज्य मिला है। धर्म से ही प्रजा का पालन करो।'

युधिष्ठिर ने उनकी बात मान ली और फिर अश्वमेध यज्ञ किया। उस यज्ञ में उन्होंने सारा राज्य व्यास जी को दान कर दिया। व्यास जी तो तपस्वी थे। राज्य लेकर क्या करते। उन्होंने युधिष्ठिर का राज्य युधिष्ठर को ही दे दिया। उसे बहुत तरह से समझाया-बुझाया, ज्ञान-विज्ञान की

विष
रह

बातें बतायीं और फिर तप करने के लिए वन में चले गये। वहीं पर उन्होंने वेदों, शास्त्रों, पुराणों और महाभारत की रचना की। पहले उनका आश्रम कुरुक्षेत्र के पास व्यास वन में था। उसके बाद वे बद्रीनाथ से भी आगे चले गये। आज भी भारत के तथाकथित सीमावर्ती अन्तिम गाँव, मानागांव के पास, सरस्वती नदी के तट पर व्यासजी का आश्रम बना हुआ है। एक छोटी-सी गुफा है। कहते हैं इसी गुफा में उन्होंने पुराणों की रचना की थी।

उन्होंने जो उपदेश दिया उसमें तीन बातें बहुत ही ध्यान देने लायक थीं। पहली बात तो यह कि उन्होंने कहा, इस दुनिया में मनुष्य से श्रेष्ठ और कुछ नहीं है। दूसरी बात यह कि धर्म से बड़ा कुछ नहीं है। तीसरी बात यह कि हिंसा से मनुष्य का भला नहीं हो सकता। महाभारत की कहानी से ये तीनों बातें सिद्ध हो जाती हैं। कितना बड़ा युद्ध था यह, कितने आदमी मारे गये! पाण्डवों की जीत हुई, कौरव हार गये, लेकिन पाण्डव दल में सात आदमी बचे, कौरव दल में तीन। यह नाम की जीत है। नाश तो दोनों का बराबर ही हुआ। पाण्डवों को जो राज मिला वह बहुत दुर्बल था। धर्म एक तरह से नष्ट ही हो गया। अर्जुन का बल भी समाप्त हो गया। श्रीकृष्ण के वंश वाले आपस में लड़कर ही मर गये। आखिर दुखी होकर पाण्डव भी हिमालय में चले गये और वहीं गल कर मर गये। कहते हैं, केवल युधिष्ठिर ही स्वर्ग को जा सके। यह बात भी सच हो या झूठ किन्तु इससे इतना साफ है कि हिंसा से मनुष्य का कल्याण नहीं होता। यह बात कहने का साहस केवल महर्षि वेदव्यास में ही था। असल में उन्होंने मनुष्य के लिए जो धर्म ठीक है उसी की चर्चा की है। उस धर्म को आज हम वेदान्त के नाम से जानते हैं। वेदान्त का मतलब है कि जो कुछ हम जानते हैं वही सत्य नहीं है। उसके अतिरिक्त दूसरे जो कुछ कहते हैं उस पर भी हमें विचार करना चाहिए। कोई छोटा-बड़ा नहीं है। सब मनुष्य समान हैं। क्योंकि मनुष्य से बड़ा तो कुछ है ही नहीं।

ऐसा ज्ञान देने वाले व्यास जी सभी हिन्दुओं के पूज्य हैं। गुरु हैं। इसीलिए आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा को गुरुपूर्णिमा कहा जाता है। उस दिन गुरुदेव की पूजा के साथ-साथ महर्षि वेदव्यास की पूजा भी होती है।

इनके एक ही पुत्र हुए। उनका नाम था शुकदेव। वे बचपन में विरागी हो गये थे। उन्होंने विवाह ही नहीं किया। वे पिता से भी अधिक विद्वान थे। और उन्होंने पाण्डवों के पोते राजा परीक्षित को महाभारत की कथा सुनायी थी। जब तक इस संसार में महाभारत की कथा जीवित है, तब तक महर्षि वेदव्यास का नाम भी जीवित रहेगा। वे विद्वान, साहित्यकार, इतिहासकार सब कुछ थे। वे सही अर्थों में ऋषि थे। ऋषि वही है, जो केवल पीछे की बात नहीं सोचता, केवल वर्तमान को ही नहीं देखता, भविष्य की कल्पना भी करता है।

सूचना

"वशिष्ट" के ग्राहक, विज्ञापनदाता, तथा महासभा के सदस्य यदि चाहें तो विवाह योग्य वर-कन्याओं के विज्ञापन एक बार मुफ्त छपवा सकते हैं, अन्य व्यक्तियों से ५ रु० प्रति बार लिया जाता है।

—"सोमनाथ तेजपाल"

पुरस्कार

पात्र

१. सर्वदानन्द (ब्रह्मचारी) २. जीतसिंह
३. विक्रमसिंह ४. हीरा
५. भाव साहू ६. दिलावर सिंह (डाकू)
७. दारोगा जी ८. पुलिस
९. ग्रामीण आदि ।

दृश्य

(गाँव के किनारे खेत में कुएँ के पास शाम को पाँच बालक बैठे बातें कर रहे हैं ।)

एक बालक—हाँ भाई ब्रह्मचारी ! आज कोई ऐसी बात सुनाओ कि लड्डुओं का स्वाद आ जाये ।

ब्रह्मचारी—आज तो हम सब मिलकर कोई ऐसी रचना रचें कि सदा ही भगवान की प्रसन्नता होती रहे विक्रम !

विक्रम तो रचो ।

ब्रह्मचारी- देखो दोस्तो ! हम सबको दिखा देंगे कि स्वतन्त्र देश में हमारा गाँव सबसे श्रेष्ठ है । हम अपनी सेवाओं से अपना गाँव महान् बनायेंगे । वह दिन दूर नहीं जब हमारा गाँव हर तरह से सुखी सम्पन्न होगा । हम पाँच साथी पाँचों पाण्डवों की तरह अत्याचारों का नाश कर देंगे । क्यों जीतसिंह ?

जीतसिंह—ठीक है ब्रह्मचारी सर्वदानन्द जी ! यही होगा । क्यों विक्रमसिंह ?

विक्रमसिंह—सत्य वचन है सरदार जीतसिंह ! यदि पाँचों पाण्डव महाभारत के महायुद्ध में विजयी हो सकते हैं तो क्या हम पाँच जातियों के मित्र मिलकर अपने गाँव के दुःख दूर नहीं कर सकते ? यह हरिजन भाई हीरा और यह धनपति भाई साहू तथा तीनों हम अब तक के वक्त को बदलकर ही रहेंगे । हमारे संगठन और हमारी सेवाओं से हमारा गाँव स्वर्ग होगा ।

सर्वदानन्द—पर सरकार तो हमारे गाँव के लिए कुछ करती ही नहीं । नहीं तो हम बात की बात में गाँव का चित्र बदल दें ।

विक्रम—न करे सरकार, नहीं करती तो ? हम अपने गाँव के स्वयम् राजा हैं और हम खुद सरकार हैं । हम गाँव के सब बालक मिलकर बात-की-बात में सब ठीक कर लेंगे । ये टूटे-फूटे कच्चे रास्ते अगले मास शीशों की सी सड़कों में बदल जायेंगे । और देख मैं सेना में भर्ती होकर सैनिक की बड़ी-से-बड़ी शिक्षा ले कर आऊँगा । फिर मैं सारे गाँव को सैनिक शिक्षा देकर सैनिक बना दूंगा, तब देखेंगे कौन सा बहादुर डाकू हमारे गाँव में डाका डालने आयेगा ?

सर्वदानन्द—सारे गाँव को शिक्षित मैं बना दूँगा ।

भाव साहू—गाँव में धन की कमी न रहेगी, इस बात की प्रतिज्ञा मैं करता हूँ ?

हीरा- अपार श्रम-शक्ति से गांव को मैं सींच डालूँगा ! गांव के निर्माण के लिए मैं बच्चे-बच्चे को बटोर लाऊँगा ।

जीतसिंह—तो हमारी जीत निश्चित है।

(इतने में बालकों को एक मोटर के आने की आवाज सुनाई देती है। बालकों के कान खड़े हो जाते हैं।)

विक्रम—जान पड़ता है कोई अफसर आ रहे हैं।

जीतसिंह—हाँ कोई अफसर आये होंगे।

हीरा—तो चलो !

सर्वदानन्द—चुपचाप बैठे रहो और देखो ये कौन हैं, कहीं डाकू न हों।

विक्रम - (धीरे से) हो सकता है डाकू हों ! गाँव में तो रोज डाके पड़ते हैं। इसलिए सब चुपचाप लेट जाओ और देखो क्या होता है ?

(सब खेत में छिपकर लेट जाते हैं। मोटर उनसे थोड़ी दूर पर रुकती है। उसमें से पाँच छः डाकू भयानक वेश में निकलते हैं और गाँव में घुस जाते हैं।)

विक्रम—(धीरे से) क्या करना चाहिए ? इनके पास बन्दूक और पिस्तौल हैं। अरे वह देखो वह तो भाव साहू के घर में घुस गये। निश्चित ही ये भाव के बूढ़े माता-पिता को मार डालेंगे।

जीतसिंह—तो फिर चलो, एक-दम इन डाकुओं पर टूट पड़ें और छीन लें इनकी बन्दूकें।

सर्वदानन्द - अन्धे होकर कोई काम मत करो, बुद्धि से विचार कर आगे बढ़ो !

विक्रम - तो जल्दी बताओ क्या करें ?

सर्वदानन्द जीतसिंह, तुम जल्दी से घर जाओ और अपने बाबा की पिस्तौल फौरन ले आओ। हो सके तो अपने बापू की दुनाली भी लेते आना और जिस समय तुम इस खेत से बीस कदम रह जाओ उस समय बन्दूक चलाना और जोर से कहना "घेर लो इन डाकुओं को ! मिलिटरी के बहादुर सिपाहियो ! एक भी इनमें से बचकर न निकलने पाये" इतना कहकर तुम फौरन हमारे पास आकर लेट जाना ! आगे हम जैसे कहें करते रहना।

जीतसिंह—जैसी आज्ञा ! (कहता हुआ छिपता-छिपता चल देता है।

सर्वदानन्द—हीरा तुम जाओ और फौरन पुलिस चौकी पर खबर करो। जल्दी से पुलिस यहां आनी चाहिए।

हीरा - मैं अभी बात की बात में चौकी पर खबर करता हूँ।

(कहता हुआ खेत के पिछले रास्ते से दौड़ा चला जाता हैं।)

सर्वदानन्द विक्रम ! जान पड़ता है कि इस मोटर में एक चालक है और एक डाकू। किसी तरह अगर मोटर चालक को यमराज के यहाँ भेज दिया जाये तो ये डाकू भाग नहीं सकेंगे।

विक्रम हम तीनों इन पर आक्रमण बोल दें !

सर्वदानन्द अभी नहीं, जीतसिह को बन्दूक ले आने दो।

भाव साहू - किसी तरह बिना हत्या के सारे डाकू पकड़ लिये जायें तो बहुत अच्छा हो।

विक्रम यत्न ऐसा ही करना चाहिए ! अच्छा साहू जी चुपचाप खेत के कुएँ पर से रस्सी खोलकर यहाँ ले आओ।

भाव साहू बहुत अच्छा ! (कहता हुआ चला जाता है।)

सर्वदानन्द वह जीतसिंह बन्दूक लिये लुकता हुआ चला आ रहा है, पर उसे खेत से बीस कदम परे अभी बन्दूक नहीं चलानी चाहिए। तुम दौड़कर जाओ ? चुपचाप उसे यहाँ ले आओ।

विक्रम हाँ, यही मैं सोचता था। अच्छा मैं उसे चुपचाप लेकर आता हूँ।

(कहता हुआ जाता है और बात की बात म जीतसिंह के साथ रेंगता हुआ लौट आता है।)

सर्वदानन्द यह भाव जी रस्सी भी खोल लाये, अब देर नहीं करनी चाहिए। चालक ऊँघ रहा है। और डाकू भी विशेष सतर्क नहीं है।

विक्रम तो जय भारत, बढ़ो आगे।

(सब से आगे जीतसिह बन्दूक ताने और सबसे

पीछे साहू रस्सी लिये चुपचाप रेंगते हुए मोटर के निकट पहुँच एकदम आक्रमण करते हुए खड़े हो जाते हैं।)

विक्रम—हाथ ऊपर करो।

(एकदम आक्रमण से डाकू के हाथ से पिस्तौल छूट पड़ती है, विक्रम लपक कर पिस्तौल उठा लेता है, डाकू और चालक हाथ ऊपर कर देते हैं।)

विक्रम—साहू जी, बाँध लो इन दोनों लुटेरों को।

जीतसिंह—बाँध दो दोनों को, सामने वह जो बबूल का पेड़ है, उससे।

(साहू जी और सर्वदानन्द उन दोनों को बबूल के पेड़ से बाँध देते हैं। इतने में गाँव में गोली चलने की आवाज आती है।

विक्रम—डाकुओं ने गोलियाँ चलाई हैं, जान पड़ता है किसी की हत्या कर डाली। जीतसिंह आगे बढ़ते हुए फायर करो और जोर से कहो, मिलिटरी के वीर सिपाहियो! एक भी डाकू बचकर न जाने पाये।

(बहादुर बालक आगे बढ़कर सिंहनाद करते हुए फायर करते हैं, बालकों की गर्जना सुन डाकू भी गोलियाँ चलाते हैं। डाकू गोलियाँ चलाते हुए बालकों के सामने आ जाते हैं। पर जैसे ही डाकू सामने आते हैं। जीतसिंह की बन्दूक की गोली एक डाकू के पैर में लगती है। वह गिर पड़ता है। शेष डाकू इधर उधर भागने लगते हैं।)

विक्रम—भागकर जाने की कोशिश मत करो। अगर जिन्दगी चाहते हो तो हाथ उठाकर खड़े हो जाओ।

(विक्रम यह कह ही रहा था कि एक सनसनाती गोली उसके पैर में आकर लगती है, विक्रम गिर पड़ता है, पर वह पड़ा ही पड़ा गोलियाँ चलाता है और गोली मारने वाले डाकू के सीने में घुसती है। डाकू चीत्कार करता हुआ मर जाता है। इतने में हीरा के साथ पुलिस की लारी आ जाती है। बाकी के डाकू हथियार डाल देते हैं। और हाथ उठाकर खड़े हो जाते हैं।)

दारोगा—सिपहियो! डाकूओं के हाथों में हथकड़ियाँ डाल दो। (एक डाकू की ओर गौर से देखता हुआ) आह! आप हैं खतरनाक डाकू दिलावरसिंह? आप को पकड़ने वाले को तो सरकार की ओर से २५ हजार रुपया पुरस्कार मिलेगा।

दिलावरसिंह—धन्य भाग हैं आपके!

दारोगा—धन्य मैं नहीं, धन्य तो ये होनहार बालक हैं जो अपनी जान पर खेलकर धरती को एक भयंकर डाकू से मुक्त करने में सफल हुए।

(पाँचों बालक मन्द-मन्द मुस्कराते हुए धरती देखने लगते हैं। डाकू दिलावरसिंह बालकों को प्रेम की दृष्टि से देखता है? घटनास्थल पर गाँव वालों की भीड़ लग जाती है।)

दिलावरसिंह—यशस्वी बच्चो! ईश्वर तुम्हारी कीर्ति को सदा चार चाँद लगाता रहे। जिस डाकू का नाम सुनते ही एक सिरे से दूसरे सिरे तक की आवाज बन्द हो जाती थी, उसे आज तुम्हारी हिम्मत के आगे हारना पड़ा।

बिक्रम—हमसे हर अत्याचारी को हारना ही पड़ेगा।

दारोगा—धन्य है तुम्हारी वीरता? इस बहादुरी के फलस्वरूप तुम्हें पच्चीस हजार रुपये सरकार से पुरस्कार में मिलेंगे। और एक स्वर्ण-पदक मैं तुम्हें अपनी ओर से इनाम दूंगा। पुरस्कार के पच्चीस हजार रुपए पाकर तुम उनका क्या करोगे?

सर्वदानन्द—अपने गाँव की उन्नति करेंगे। ये पच्चीस हजार हम ग्राम-निर्माण में लगायेंगे। लेकिन रुपये और स्वर्णपदक से भी अधिक पुरस्कार हमारे लिए चार बन्दूकों का होगा। यदि आप हम पर प्रसन्न हैं, तो हमें चार बन्दूकें दिला दीजिए,

जिससे कि हम अपने गाँव की और आवश्यकता पड़ने पर अपने राष्ट्र की रक्षा कर सकें।

दारोगा—धन्य है तुम्हारी वीरता ! तुम्हारी इच्छा सदा पूरी होंगी। जिस देश में तुम जैसे बालक हों उस देश की ओर किसी की पाप भरी आँखें नहीं उठ सकतीं। भारत तुम्हारे गुण गायेगा।

दिलावरसिंह—तुम्हारे त्याग और साहस की जय ! (अपने गले से सुच्चे मोतियों की माला निकाल बालकों को देता हुआ) लो ! यह तुम्हारी वीरता पर एक डाकू का पुरस्कार है। अपने अपराधों के बदले यदि मुझे फाँसी का दण्ड भोगना पड़ा तो मैं सहर्ष भोगूँगा और अगर छूट गया तो तुम्हारे ग्राम-निर्माण में लग जाऊँगा। (दारोगा की ओर देखता हुआ) चलो, ले चलो मुझे मेरे किये की सजा देने के लिए।

(पुलिस डाकुओं को पकड़ कर ले जाती है। पाँचों बालक गाँव वालों के साथ गाँव की ओर प्रस्थान करते हैं।)

———

धर्मवीर बच्चे

(श्री तालब चकवाली B. A. LL. B.)

जिस कौम के बच्चे अपने प्यारे धर्म पर कटते-मरते हों,
जिस कौम के बच्चे अपने धर्म पर जान देने से न डरते हों।
जिस कौम के बच्चे हर दम अपने धर्म ही का दम भरते हों।
जिस कौम के बच्चे धर्म की खातिर जान भी न्यौछावर करते हों
वो कौम है योद्धा वीरों की या शूरवीर रणवीरों की
जिस कौम का था एक बालक वीर हकीकत धर्म का शैदाई,
जिस कौम की खातिर उसने अपनी गर्दन शौक से कटवाई।
शैदाये हिन्दू धर्म रहा, मर कर भी इसका अनुयाई,
जिस कौम पर मरकर अमर हुआ, जान दी और कौम ने जान पाई।
वो कौम है योद्धा वीरों की या शूरवीर रणवीरों की
दशमेष के प्यारे बच्चे दोनों चिने गये दीवारों में।
सर धर्म की खातिर देकर वो सरदार हुए सरदारों में,
वो कौम के गुलशन में हैं जैसे फूल हों लाल अंगारों में।
जिस कौम पे मरने वाले ये मम्ताज हैं कौम के प्यारों में,
वो कौम है योद्धा वीरों की या शूरवीर रणबीरों की
जिस कौम ने ऐसे शेर बहादुर बच्चे गोद में पाले हों,
जिस कौम के बच्चे अपने धर्म की खातिर मरने वाले हों।
जिस कौम के बच्चे कौमी हित के शैदा हों मतवाले हों,
जिस कौम के बच्चे धर्म और देश के रक्षक और रखवाले हों।
वो कौम है योद्धा वीरों की या शूरवीर रणवीरों की।

शर्मिष्ठा का त्याग

एक बार असुरों के राजा वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा अपनी बहुत सी सहेलियों को साथ लेकर सरोवर पर स्नान करने गई। उसके साथ शुक्राचार्य की कन्या देवयानी भी थी। सरोवर के किनारे अपने अपने कपड़े उतार कर पानी में कोई तैरने, कोई नहाने, और कोई किसी को गोते देने लगी। इस प्रकार खेलते उन्हें अभी बहुत देर न हुई थी कि इतने में बहुत जोर से आन्धी चली। जिससे किनारे पर पड़े हुए कपड़े उस प्रचण्ड वायु के वेग से उड़कर दूर जा पड़े और आपस में एक दूसरे से मिल गये। इस तरह कपड़ों को उड़ता देख सभी सरोवर से बाहर निकल आईं। नग्न होने के कारण सभी को कपड़ों के लिये आपाधापी पड़ गई। जो जिसके हाथ में आया उसने वही पहन लिया। उस आन्धी के अन्धेरे में कोई यह न पहचान सकी कि पहना हुआ कपड़ा उसका अपना है या पराया। इस हड़-बड़ी में शर्मिष्ठा ने अपने वस्त्रों के भ्रम से देवयानी के वस्त्र पहन लिये। जब आन्धी थमी, तो सभी अपने-अपने कपड़े पहचानने और दूसरी के गले में अपने कपड़े देखकर परस्पर उपहास करने लगीं। एक को दूसरी ने कहा, "अरी! तुमने तो मेरी साड़ी पहन ली है," वह बोली, "तुमने भी तो मेरा कुरता पहना हुआ है।"

तीसरी बोली, "क्या करूं! मेरा तो दुपट्टा न जाने किधर उड़ गया है। चौथी ने कहा, "तुम एक दुपट्टे को कहती हो, मेरा तो अपना एक भी वस्त्र नजर नहीं आता।" पांचवीं बोली, "तुम्हें अपने कपड़े पता नहीं मिलेंगे भी या नहीं, परन्तु मेरे तो उतार कर मुझे दो।"

इतने में देवयानी कुछ ढूँढती हुई वहाँ आ गई। उसने शर्मिष्ठा के गले में अपना वस्त्र देखकर कहा—"राजकुमारी जी! आपने बिना देखे ही मेरा वस्त्र पहन लिया, अब मैं क्या पहनूँ?"

शर्मिष्ठा बोली—"तेरा वस्त्र है तो क्या हुआ? मैं उसे खा थोड़ी ही गई हूँ।"

देवयानी बोली, "राजकुमारी! यह आप क्या कह रही हैं? कपड़ा कोई खाने की वस्तु थोड़ी ही है, जिसे आप खा जातीं। शास्त्र में दूसरे के पहने हुए वस्त्रों के पहनने का निषेध है। अतः मैं कभी भी किसी का पहना हुआ कपड़ा नहीं पहनती। इसीलिये कहा है।" शर्मिष्ठा ने कुरता उतार कर फेंकते हुए कहा, "यह ले अपनी जायदाद, बड़ी आई कहीं से वस्त्रों वाली। अपनी सूरत तो देख! तू है कौन और किसके सामने बड़-बड़ कर रही है।"

देवयानी ने कहा, "राजकुमारी! आप यह क्या कह रही हैं? जरा सोच समझ कर बात करो, मैं आपके पिता के गुरु की पुत्री हूँ। मुझसे आपको सम्मान से बातें करनी चाहियें। मैंने तो अभी तक आपको कोई बुरी बात नहीं कही।"

शर्मिष्ठा ने धक्का देकर कहा, "तू बुरी बात कहने वाली कौन है री! तेरी इतनी मजाल कि हमारे टुकड़ों पर पल कर हमीं से इतना मजाज कर रही है। तेरा बाप हमारा नौकर है। पिता जी तो उसे दीन ब्राह्मण समझ कर दान देते हैं और तू वही देखकर अपने आपको हमारे गुरु की पुत्री बता रही है। बड़ी आई कहीं से राजगुरु की बच्ची! तुझे पता नहीं कि तेरा पिता सदा भाटों की भांति मेरे पिता जी की स्तुति करता फिरता है। उस भिखारी की लड़की होकर तुम्हें मेरे सामने बड़बड़

करते शर्म नहीं आती।"

यह सुनकर देवयानी ने कहा—"आसुरी! तू बड़ी बे-लगाम है। तू इतनी उजड और असभ्य हो सकती है, यह मुझे स्वप्न में भी ध्यान न था। अरी! जिसके आगे सिर रगड़ते तेरे पिता की सारी आयु बीत चली है, उसे भिखारी कहते तुझे तनिक लाज नहीं आई। इससे जान पड़ता है, कि तू बड़ी निर्लज्ज है।"

यह सुनते ही शर्मिष्ठा को आग सी लग गई। उसने अपनी सहेलियों को कहा, अरी! देखती क्या हो? उसे पकड़ कर जान से मार क्यों डालतीं। यह इस तरह हमारा अपमान कर रही है और तुम चुप चाप तमाशा देख रही हो।"

यह सुन बहुत सी कन्याओं ने देवयानी को पकड़ लिया और उनकी सहायता से शर्मिष्ठा ने देवयानी को एक सूखे हुए कुंए में गिरा दिया। वहाँ गिराने के बाद यह समझ कर कि अब वह मर गई होगी। सभी अपने-अपने घर चली गईं। इधर दैवयोग से राजा ययाति शिकार खेलता-खेलता उस कुएँ के पास आ गया। राजा को प्यास लगी थी। उसने पानी देखने के लिये कुएँ में झाँका तो उसे उसके अन्दर एक कन्या दिखाई दी। ययाति ने दया करके उस कन्या को कूप से बाहिर निकाल दिया।

इतने में घूर्णिका नाम की दासी देवयानी को ढूँढती हुई वहाँ आ पहुँची। उसने उसे बहुत कहा कि वह घर चले पर देवयानी ने एक न मानी। उसने कहा, "घूर्णिका मेरे पिता जी को कह देना कि मैं अब जीते जी बृषपर्वा के नगर में नहीं आऊँगी, क्योंकि उसकी बेटी ने राजमद में आकर मुझे स्तुति करने वाले भिखारी की बेटी कह मेरा अपमान किया है। मुझे जान से मारना चाहा है।"

दासी घूर्णिका ने ये सभी बातें शुक्राचार्य को जाकर सुना दीं। सुनते ही वह घबराया हुआ देवयानी के पास आया और उसे कहने लगा, "कौन कहता है कि तू लोगों की स्तुति करने वाले की बेटी है। मैं भगवान के सिवाय और किसी की कभी स्तुती नहीं करता हूँ। यहां सभी लोग मेरी स्तुति किया करते हैं। ईश्वर ने मुझे वह शक्ति प्रदान की है। जिसके कारण प्राणी मात्र को मेरी आवश्यकता है। बृषपर्वा बेचारा है ही क्या चीज? संसार के सभी राजा महाराजा मेरे चरण चूमते हैं। परन्तु इतनी शक्ति होने पर भी मुझे अभिमान करना नहीं भाता। इसीलिए मैं चाहता हूँ, कि जो हुआ उसे भूल कर तू शर्मिष्टा को क्षमा कर दे। बदला लेने से क्षमा करने में अधिक महत्व है।"

देवयानी ने कहा—"क्षमा करने की आप में शक्ति है, इसलिये आप क्षमा भले ही कर दें। परन्तु मैं मौत के मुंह में जा, गाली खा और अपमान करवा उस अभिमाननी का अभिमान रहते किस मुँह से कहूँ कि मैं क्षमा करती हूँ। पिता जी! यह क्षमा नहीं क्षमा का और अपना उपहास है, मैं क्षमा नहीं शर्मिष्ठा से अपना बदला या मौत इनमें से एक चाहती हूँ। यदि आप मुझे कुछ दिन जीवित देखना चाहते हैं, तो आज ही इस नगर को ही नहीं बृषपर्वा के राज्य को और उसके सम्बन्ध को सदा के लिये त्याग दीजिये।"

पुत्री के स्नेह के कारण बृषपर्वा को छोड़ने का निश्चय कर शुक्राचार्य, बृषपर्वा के पास गया और उसे सारी बात सुना कर कहने लगा, "राजन्! मैं जाता हूँ। अब तुम्हारे देश में नहीं रहूँगा।"

यह सुन सारी सभा में सन्नाटा छा गया। बृषपर्वा तो उसके पाँव पर गिर कर कहने लगा, "गुरुदेव! हम तो यहाँ रहते ही केवल आपके सहारे हैं। यदि आप हमें छोड़ कर चले जायेंगे तो देवता लोग हमें एक दिन में समाप्त कर देंगे, इसलिए हम यहाँ रह ही कैसे सकते हैं? हम तो आप से भी पहले समुद्र पार के जंगलों में जा छिपेंगे। गुरु महाराज! हम पर प्रसन्न होजिये, हमारा सर्वनाश न कीजिये, हमें देश निकाला न दीजिये।"

इस प्रकार अनुनय विनय सुनकर शुक्राचार्य ने कहा, "यह सब ठीक है, पर क्या करूं, देवयानी नहीं मानती। यदि तुम उसे मना लो तब मैं रह सकूँगा। अन्यथा पुत्री के बिना मेरा रहना असम्भव है।" यह सुन वे दौड़े-दौड़े देवयानी के पास आ कर उसकी खुशामद करने लगे। बृषपर्वा ने कहा, "आप जो कहें हम वही करने को तैयार हैं। आप किसी तरह यहाँ रह जायें।" पहले तो देवयानी बिल्कुल न मानी फिर उनके बहुत आग्रह करने पर वह कहने लगी, "चाहे तुम कुछ करो परन्तु मैं तब तक यहाँ न रहूँगी, जब तक वह राजा की बेटी कहलाने वाली अभिमान की पुतली शर्मिष्ठा, जो मुझे एक भिख-मंगे की बेटी कह कर कुएँ में फेंक गई थी, मेरे सामने हाथ जोड़ कर यह प्रतिज्ञा न करे, कि आज से आयु भर मेरी दासी बन कर रहेगी और मेरे पिता जहाँ मेरा विवाह करेंगे, वहाँ मेरे साथ दासी बन कर चलेगी।"

यह सुन बृषपर्वा ने कहा, "मैं यह नहीं कह सकता देवयानी! मैं विवश हूँ। तुम्हीं सोचो, तुम्हारे पिता जब इतना कुछ कर सकते हैं, तो मैं भी तो उसका पिता हूँ, मैं उस के लिए क्या न करूँगा। मैं अपना देश छोड़ दूँगा; दुःख सहूँगा; भीख माँगूँगा; भूखा रहूँगा और यदि इतने पर भी विपत्ति ने मेरा पीछा न छोड़ा, तो मर मिटूँगा, परन्तु अपनी सन्तान को किसी का दास न होने दूँगा।" फिर उसने अपने मन्त्रियों को कहा, "मन्त्रिगण! समय की बात होती है, कोई समय था, हम देवताओं के देश पर आक्रमण किया करते थे, पर अब समय बदल गया है। जब से गुरु जी से 'कच मृतसंजीविनी विद्या' सीख गया है तभी से देवताओं के दान्त हमारे देश पर लगे हुए हैं। निस्संदेह वे हम से अधिक शिक्षित तथा बली हैं, परन्तु फिर भी हमसे सदा हारते रहे हैं। इसका रहस्य आप सब अभी तक शायद न जानते थे। बात यह थी कि गुरु महाराज को एक विद्या आती है। उसी का नाम मृतसंजीविनी है। दिन के समय देवताओं के साथ युद्ध करते-करते हमारे जितने भी सैनिक मरते थे उस विद्या के बल से शुक्राचार्य उन सभी को जीवित कर दिया करते थे।

अब हमारा दूर्भाग्य देखो, इधर तो वह हमें छोड़ कर जा रहे हैं और उधर देवताओं का गुरु-पुत्र कच वह विद्या सीख चुका है। इसलिए हमारी विजय अब सर्वथा असम्भव हो गई है। अतः वे हम से पुराने बदले चुकायें, हमें अपमानत करें, सतायें, इस से पहले ही हमें अपना देश छोड़ कर स्वयं ही भाग जाना चाहिए।"

यह सुन कर और तो कोई कुछ न बोला, परन्तु शर्मिष्ठा ने कहा, पिता जी! मुझे देवयानी की शर्त स्वीकार है।"

बृषपर्वा ने आश्चर्य से पूछा, "बेटी! क्यों?"

शर्मिष्ठा बोली, "अपने देश की स्वतन्त्रता के लिए, अपनी जाति के रक्षार्थ और आपके सुख के वास्ते इस जन्म की तो बात ही क्या है, यदि दूसरे जन्म में भी मुझे दासी बनना पड़े तो मैं सहर्ष तैयार हूँ।" यह कहती हुई शर्मिष्ठा देवयानी के पास गई और उसे कहने लगी, श्रीमती जी! आप घर चलें, मैं आज से सदा आपकी दासी बन कर रहूँगी।"

"गंगाहर"

अब "ब्राह्मण भवन" के निर्माण में सन्देह नहीं

क्योंकि इसके लिए पहला कदम एक देवी ने उठाया है

मैं ब्राह्मण महासभा की कार्यकारिणी समिति के आदरणीय सदस्य श्री सन्त कृष्ण कुमार जी, एम० ए०, ३ जे/१७३ राजोरी गार्डन, नई दिल्ली, की पूजनीय माता श्रीमती राज कौशल्या जी का अपनी और महासभा की ओर से हार्दिक धन्यवाद करना अपना परम कर्त्तव्य समझता हूँ। आपने "ब्राह्मण भवन" के निर्माण के लिए १००१ रुपये (एक हजार एक रुपये) देकर ब्राह्मण महिलाओं के लिये एक सराहनीय उदाहरण प्रस्तुत किया है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि बहुत-सी अन्य महिलायें भी इस उदाहरण का अनुकरण करते हुए 'ब्राह्मण भवन' के लिये लक्षित धनराशि (कम से कम दो लाख रुपये) एकत्रित करने में पूरा योगदान देंगीं।

दौलतराम गंगाहर

वीर बाला

मां ! मुझको तलवार मँगा दे।

१. समय पड़े पर कर में ले लूँ
और उसी से रण में खेलूँ
भारत के सब संकट झेलूँ
पूरी मेरी साध करा दे।
मां ! मुझको तलवार मंगा दे।

२. नहीं मुझे यह गुड़िया भाती।
ना मैं इसका ब्याह रचाती।
इसमें मुझ को लज्जा आती।
माता इसको परे हटा दे।
मां ! मुझको तलवार मंगादे।

३. नन्हीं मुन्नी मुझे समझती
पर मुझ में अपार बल शक्ति
मैं चण्डी दुर्गा बन सकती
मेरा साहस तनिक बढ़ा दे।
मां ! मुझको तलवार मंगा दे।

४. नहीं बनूँगी अबला नारी
इस में तो अपयश है भारी
मैं काली रिपुदल संहारी
बनूं, ईश, वह दिन दिखला दे।
मां ! मुझको तलवार मंगा दे।

५. कष्ट देश के दूर करूंगी
इसी लिये मैं जियूं मरूंगी
नहीं काल से तनिक डरूंगी
मेरे दृढ़ संकल्प बना दे।
मां ! मुझको तलवार मंगा दे।

६. ऐसा कोई गीत सुना दे
जो मेरे मन आग लगा दे
एक उबाल रुधिर में ला दे
ऐसा कोई भेद बता दे।
मां ! मुझको तलवार मंगा दे।

७. भारत को ऊँचा ले जाऊँ
सदा देश का मान बढ़ाऊँ
निशदिन इसके ही गुण गाऊँ
धुन की पक्की मुझे बना दे।
मां ! मुझको तलवार मंगा दे।

टेक की रक्षा

श्रीमती कमला चौधरी

(गतांक से आगे)

ब्राह्मणी लालायित नेत्रों से दूर तक दृष्टि दौड़ा कर भली-भांति उन वस्तुओं का अवलोकन करने की चेष्टा करने लगी। उसके मन ने जैसे आज ही जाना कि अयोध्या में धन-धान्य का अभाव नहीं है। उसके जीवन में ऐसी वस्तुएँ बड़े परिमाण में देखने का यह पहला ही अवसर था। यह दृश्य उसके लिए सर्वथा नवीन था। कौतूहल-निवारण की चेष्टा से ब्राह्मणी ने अपनी बड़ी कन्या मनस्विनी से कहा—पुत्री ! बाहर जाकर किसी दर्शक से पूछ कर शीघ्र आओ कि राजगृह की यह सम्पति इस प्रकार सरयू के तीर पर क्यों लाई गई है ?"

मनस्विनी तुरन्त ही अपने बहिन-भाइयों के साथ बाहर भाग गई और लौटकर जो सम्वाद सुन आई थी, वह अपने शब्दों में माता को सुनाने लगी :–

"मां ! महाराज दशरथ ने अपने ज्येष्ठ पुत्र रामचन्द्र जी को चौदह वर्ष का बनवास दिया है। रामचन्द्र जी अपने भाई लक्ष्मण और अपनी स्त्री सीता के साथ आज वन-यात्रा करेंगे। राम, लक्ष्मण और सीता अपनी सब सम्पत्ति ऋषियों, ब्राह्मणों और दीन-दुःखियों को दान कर रहे हैं। यह भारी भीड़ दानार्थियों की एकत्रित है।" ब्राह्मणी के हृदय में लालसा हिलोरें मारने लगीं, अभाव-पूर्ति के लिए व्यग्र हो उठी उस ने आतुरता से कहा– "बच्चो ! सब लोग जाओ और शीघ्र ही अपने पिता को ढूंढ कर बुला लाओ। वह भी जाकर राजकुमार रामचन्द्र से दान में यह सब वस्तुएँ प्राप्त करें, तो हमारे दुःख दूर हो जायें।

बच्चों के मुख में स्वयं ही दूर से खाद्य साम-ग्रियों को देख-देखकर पानी भर-भर आ रहा था। आंखें उसी ओर देखने को मचल रही थीं। मां के मुख से ऐसी बातें सुनकर वे प्रसन्नता से पिता को ढूंढने चले गये। किन्तु मनस्विनी कुछ चिंता में पड़कर चुपचाप खड़ी रह गई। उसे इस प्रकार खड़ी देखकर अधीर होकर माता ने ताड़ना के शब्दों में कहा –"पृथ्वी की ओर क्या निहार रही है ? दुष्ट ! शीघ्र भाग कर जा। तेरे पिता समीप ही के किसी वन में फल-फूलों का अन्वेषण कर रहे होंगे। उन्हें शीघ्र बुला ला। तू अपने बहिन-भाईयों में सब से बड़ी है। किन्तु बुद्धि में सबसे हीन जान पड़ती है।"

माता को कुपित होते देखकर डरते हुए पीड़ित वाणी में मनस्विनी ने कहा :—"मां ! तुम तो हम लोगों को सदैव उपदेश देती हो कि भिक्षावृति बहुत दूषित कर्म है और क्षुधा से प्राण दे देना उत्तम है, किन्तु किसी के सम्मुख हाथ फैलाना उचित नहीं है। पिता को कितनी बार मैंने कहते सुना है कि भगवान ने मनुष्य को परिश्रम करने के लिये यथेष्ट शक्ति दी है। बिना परिश्रम के अन्न ग्रहण करना अखाद्य खाने के बराबर है। फिर तुम आज पिता जी को अन्न वस्त्र मांगने के लिए क्यों भेजना चाहती हो ? मां !"

बालिका की बात सुनकर ब्राह्मणी क्षण भर को स्तब्ध रह गई। मन ही मन वह अपनी भूल अनुभव करने लगी। किन्तु तुरन्त ही बुद्धि ने फिर दीनता के लगातार होने वाले प्रहारों का स्मरण कराया। ब्राह्मणी सावधान हो गई। उसने इस बार दुलार से कहा—"यह बात दूसरी है पुत्री ! भिक्षा में और सम्मानपूर्वक श्रेष्ठ जनों के हाथ से धन लेने में बहुत अन्तर है। तेरे पिता का ग र्ग-गोत्रीय वंश में जन्म हुआ है। ब्राह्मण सर्वथा दान लेने का अधिकारी है। तू

शीघ्रही पिता को बुला ला।'' वार्तालाप में सफलता प्राप्त करके भी ब्राह्मणी को लगा, जैसे मनस्विनी के साथ ही, बुद्धि की युक्ति द्वारा, वह अपने हृदय को भी छल रही है। अब तक दान ग्रहण करना ही उन लोगों ने अपना सम्मान माना होता, तो क्या प्रजापालक राजा दशरथ के समृद्धिशाली राज्य में वे इस दीन अवस्था को प्राप्त होते ? कितनी ही बार तो उसने राजगृह में अनुष्ठान और दान-पुण्य होने की बात सुनी है, किन्तु इससे पूर्व कभी भी उसके मन में दान लेने की अभिलाषा उत्पन्न नहीं हुई थी। फिर भी ब्राह्मणी तत्परता से इस विचार को सर्वथा भूलने की चेष्टा करने लगी। उसने निश्चय कर लिया कि इस विषय में अपनी पुरानी धारणा को परास्त कर इस समय वैसे विचारों पर उपयोगिता की विजय करना ही उचित है। अपने साथ ही उसे अभी पति की चिरसंचित धारणा के साथ संघर्ष करना पड़ेगा। उसके विचार-परिवर्तन के लिए दृढ़ता पूर्वक तटस्थ रहने की आवश्यकता है।

ब्राह्मणी ने, जो स्वयं भी अब तक पति की दान न लेने वाली प्रवृत्ति की समर्थक थी, इस समय पति की उस टेक के विरुद्ध हट करने का संकल्प कर लिया। वह सोचने लगी कि किसी प्रकार आज उनके बीच ऐसा प्रसंग उठे ही नहीं, तो उत्तम हो। पतिदेव उस धारणा के महत्व को ही नहीं, बल्कि उस धारणा ही को बिल्कुल भूल जायें, उनकी बुद्धि पर इस विचार की ओर से पर्दा पड़ जाय।

वह इसी प्रकार की कल्पना कर रही थी कि उसी समय ब्राह्मण त्रिजट ने झोंपड़ी में प्रवेश करके कातर स्वर में कहा—"ब्राह्मणी ! आज तो कदाचित बच्चों को भी उपवास ही करना पड़ेगा। प्रातः से अब तक लगातार परिश्रम करने पर भी आज फल-मूल प्राप्त नहीं हो सके, केवल कैथ के दो कच्चे फल और कुछ लकड़ियाँ ही पाई हैं। उपवास करते-करते मेरी शारीरिक शक्ति अब हार-सी मान रही है। परिश्रम के कारण मुझे कुछ ताप हो आया है। मस्तक में पीड़ा हो रही है और आँखों में पृथ्वी घूमती जान पड़ रही है। रुग्ण होने के कारण परास्त होकर मैं वन से लौट आया हूँ। मुझे सरयू का कुछ जल ही पान कराओ कुछ स्वस्थ होकर फिर वन में जाकर फल-मूल लाने की चेष्टा करूँगा।''

ब्राह्मणी को इस समय पति के वचन अनावश्यक और व्यर्थ से जान पड़े। रोग की बात असामयिक सी लगी। रूग्णता की बात सुनकर मन में सेवा-भाव उत्पन्न नहीं हुआ, न उसे शीघ्र ही विश्राम कराने का उपक्रम करना ही आवश्यक प्रतीत हुआ। वह चाह रही थी कि किसी प्रकार पतिदेव अपनी वार्ता समाप्त करें, उनकी जिह्वा का क्रम रूके, तो वह अपना आग्रह प्रकट करके दीनता निवारण का उल्लेख करे। उस समय उसका मन, प्राण तथा समस्त इन्द्रियाँ संकट से छुटकारा पाने को विकल हो उठी थीं। उसका हृदय दीनता के विकराल बाण सहते-सहते क्षत-विक्षत हो रहा था। क्षुधा से व्याकुल अबोध बच्चों की हृदयग्राही दशा के परिणाम की कल्पना से उसके धैर्य का अन्त हो गया था। सहन-शक्ति जैसे सदैव को उसके अन्तर से विदा हो चुकी थी।

पति के सिर से लकड़ियों का बोझ उतरवाते हुए, उसने व्यग्रता से कहा "आप किंचित ढाढ़स रखकर सहनशक्ति से काम लीजिये। भगवान ने आज हम लोगों के क्लेश-निवारण करने का विधान रचा है। वह देखिये ! सरयू के तट पर राजकुकार रामचन्द्र बहुत बड़े परिमाण में संपत्तिदान कर रहे हैं। दानार्थियों का विशाल समूह वहाँ पर एकत्रित है। आप भी जाइये और रामचन्द्रजी से अपना नाम, वंश तथा जीविका के अभाव से परिवार की दूर्दशा का वर्णन करके यथेष्ट सम्पत्ति दान में पाइये, तो हप लोगों के कष्ट दूर हों औद बच्चों की प्राण रक्षा करें। फिर इस प्रकार नित्य आपको जंगली फल-मूलों के लिये भटकना नहीं पड़ेगा।''

क्रमशः

आधुनिक सापेक्षवाद के मूल जन्मदाता भारतीय थे

श्री प्रो० श्याम मनोहर व्यास एम० एस० सी०

आधुनिक वैज्ञानिक युग में सापेक्षवाद के सिद्धान्त (Theory of Relativity) पर महत्वपूर्ण खोज हुई है। अमेरिका के विश्व-विख्यात वैज्ञानिक अल्बर्ट आइन्स्टीन ने कई खोजपूर्ण तथ्यों के साथ अपने सापेक्षवाद के सिद्धान्त की पुष्टि की। सापेक्षवाद को पूर्ण रूप से समझना कठिन है। विश्व के बारह वैज्ञानिकों ने ही उसके सिद्धान्त को पूर्णरूप से समझा है। अभी तक वैज्ञानिक तीन आयामों (Three Dimensions) में ही विश्वास करते थे। विश्व के सभी पदार्थ इन्हीं तीन आयामों से नापे जाते थे। किन्तु आइन्स्टीन चौथे आयाम की कल्पना की। वह चौथा आयाम था समय अर्थात् काल।

सापेक्ष का अर्थ है गतिशील। संसार सापेक्ष जैनमत है। (जो कि हिन्दू धर्म का ही एक भिन्न सम्प्रदाय है) के स्याद्वाद ने आधुनिक सापेक्षवाद की आज से २५०० वर्ष पूर्व कल्पना कर ली थी। जैनियों का 'तत्वार्थसूत्र' स्याद्वाद को स्पष्ट करता है।

अब कल्पना कीजिये किसी व्यक्ति के पास सौ रुपये हैं। कोई निर्धन व्यक्ति जिसके पास कुछ भी नहीं है उस व्यक्ति के बारे में कहेगा कि उसके पास बहुत रुपये हैं, एक धनवान् जो लखपति है उसके बारे में कहेगा कि उसके पास कुछ नहीं है। कहने का तात्पर्य यह है कि दोनों व्यक्तियों ने अपनी-अपनी तुलनात्मक दृष्टि से उस व्यक्ति को अलग-अलग प्रकार से देखा। एक उदाहरण और देखिये।

खुले मैदान में एक चार फीट ऊंचा बांस गड़ा है। एक व्यक्ति जो अभी २० फीट ऊंचा बांस देखकर आया हो उस बांस को देखकर कहेगा कि बांस छोटा है, क्योंकि उसके द्वारा देखे गये बड़े बांस की तुलना में यह बांस छोटा ही है। एक अन्य व्यक्ति जो दो फीट ऊंचा बांस देखकर आया हो वह इस बांस को बड़ा ही बतायेगा। क्योंकि उसके द्वारा देखे गये पूर्व बांस से यह बड़ा है। अन्य आर्ष ग्रन्थों में भी अनेक कथायें आती हैं जो सापेक्षवाद की पुष्टि करती है।

'एक बार राजा रैवत अपमी कन्या रेवती के साथ ब्रह्मलोक को गये। उस समय पृथ्वी पर सत्ययुग था। राजा वहां १२ वर्ष तक रहे। तत्पश्चात् अपनी कन्या के साथ भूलोक को लौट आये। वे यह देखकर चकित हो गए कि पृथ्वी पर तो अब द्वापर का युग चल रहा है। सत्ययुग में प्राणी अन्य युगों की अपेक्षा लम्बे होने के कारण उन्हें उनकी पुत्री पृथ्वी के अन्य व्यक्तियों से लम्बी दिखाई दे रही थी। तदनन्तर उन्हें पता चला कि पृथ्वी का एक युग जो कई

वर्ष का होता है ब्रह्मलोक के कुछ ही वर्षों के बराबर है ।'

यद्यपि इस कथा में अतिशयोक्ति हो सकती है, पर यह तो मानना ही पड़ेगा कि भारतीयों के मस्तिष्कों में सापेक्षवाद की कल्पना अवश्य आई थी । वे इस सिद्धान्त पर विश्वास करते थे कि भिन्न-भिन्न ग्रहों पर वहां के निवासियों की कल्पना के अनुसार समय का भिन्न-भिन्न नाप है ।

श्रीमद्भगवद्गीता में एक श्लोक है--

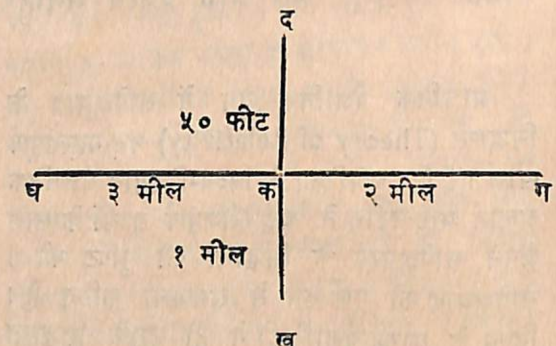
सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः ।
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥
(८.१७)

अर्थ--'हे अर्जुन ! ब्रह्मा का जो एक दिन है उसको भी हजार चौकड़ी युग तक अवधि वाला और रात्रि को भी हजार चौकड़ी अवधि वाली जो पुरुष तत्व से जानते हैं अर्थात् काल करके अवधि वाला होने से ब्रह्मलोक को भी अनित्य मानते हैं, वे योगीजन काल के तत्व को जानने वाले हैं ।'

आइन्स्टीन ने स्पेस व काल की सापेक्षता पर विश्वास किया । जिस प्रकार पृथ्वी को अपने अक्ष पर घूमने में एक दिन लगता है उसी प्रकार बुध ग्रह को अपने अक्ष पर घूमने में ८८ दिन लगते हैं । सूर्य के चारों ओर परिभ्रमण करने में भी बुध को ८८ दिन लगते हैं । अतएव बुध ग्रह के लोगों के अनुसार उनका एक वर्ष और उनका एक दिन बराबर है । हमारे यहां एक वर्ष ३६५ दिन के बराबर है । इसलिये समय सापेक्ष है । अगर निर-पेक्ष समय का अस्तित्व रहता तो निश्चित रूप से पृथक्ता नहीं घट पाती ।

अन्य ग्रहों में नहीं हमारे इस जगत में भी दो व्यक्तियों की समय सम्बन्धो धारणा भिन्न हो सकती हैं । आइन्स्टीन ने इस बात को इस प्रकार समझाया ।

कल्पना कीजिये 'क' एक स्थान है । थोड़ी-थोड़ी दूरी पर अर्थात् एक, दो और तीन मील की दूरी पर तीन व्यक्ति खड़े हैं । तीनों व्यक्ति पृथ्वी से ५० फीट की ऊंचाई पर खड़े हैं । पूर्ण रूप से समझने के लिए चित्र का अवलोकन कीजिये ।



अब कल्पना कीजिये 'क' स्थान से एक गुब्बारा ऐसी गति से उड़ाया गया कि ५० फीट की ऊंचाई तक उड़कर वह रुक गया । आकाश में 'द' स्थान गुब्बारे का स्थान है । हेलीकोप्टर पर एक व्यक्ति जो 'क' स्थान पर खड़ा था वह भी गुब्बारे के साथ आकाश में उड़ा जब गुब्बारा रुका तो तीनों व्यक्तियों व हेलीकोप्टर वाले व्यक्ति ने गुब्बारे को देखने का समय नोट किया । क्या सभी व्यक्तियों द्वारा देखा गया घड़ियों का समय एक ही आयेगा? अति सूक्ष्म समय के अवलोकन वाले यन्त्र के अभाव में देखने पर तो समय एक ही आयेगा । सामान्य-जन उसे एक ही समय बतायेंगे । पर आइन्स्टीन के सिद्धान्त से इसका उत्तर है नहीं । प्रकाश की गति १८६००० मील प्रति सैकिंड है । अतः 'द' स्थान प्रकाश के 'ख' स्थान पर पहुंचने का समय 'ग' व 'घ' से कम होगा । अगर 'ख' वाले व्यक्तिने गुब्बारा ४ बजे देखा तो 'ग' 'द' से 'ख' की अपेक्षा एक मील ज्यादा होने से उस गुब्बारे को

४ $\frac{१}{१८६०००\times६०\times६०}$ बजे देखेगा। इसी प्रकार घ व को हेलीकोप्टर वाले व्यक्तियों का समय अलग होगा। अगर हेलीकोप्टर की गति १८६००० मील प्र० सै० हो तो हेलीकोप्टर में बैठा व्यक्ति कभी स्थिर गुब्बारा देख ही नहीं पायेगा।

यह सही बताया जा सकता है ? कल्पना कीजिए कि एक व्यक्ति ट्रेन में यात्रा कर रहा है। पृथ्वी सूर्य के चारों ओर १९ मील प्रति सैकिंड के हिसाब से चक्कर लगा रही है और अपनी धुरी पर भी घूम रही है। सूर्य भी स्थिर नहीं है। वह भी १३ मील की गति से चक्कर काट रहा है। नक्षत्र-जगत भी प्रति सैकण्ड २०० मील के वेग से चल

यह सिद्धान्त हमारे प्राचीन भारतीय वैज्ञानिकों के सदृश ही है। प्राचीन काल में भारतीयों ने आधुनिक विज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति की थी। दिक् (स्पेस) भी सापेक्ष है। लोग कहते हैं कि पृथ्वी स्पेस के बीच से गुजर रही। किन्तु स्पेस है क्या ? क्या स्पेस निरपेक्ष है ? कोई वस्तु स्पेस से होकर कितनी तीव्र गति से गुजर रही है, क्या रहा है। अतएव जब हम किसी वस्तु की अवस्थिति का निर्देश करते हैं तो वह सब सापेक्ष ही होता है। इसलिये स्पेस सापेक्ष है। आइन्स्टीन के सापेक्षवाद से कई आश्चर्यजनक तथ्य सामने आये हैं। हमारे शास्त्रों में विश्व को गतिशील माना गया है। अल्बर्ट आइन्स्टीन आधुनिक वैज्ञानिक होते हुए भी पूर्ण आस्तिक व ईश्वरवादी थे।

अपमान

श्री रमेश चन्द्र "करुणेश"

मुनि ! अरी मुनि ! जल्दी आ । जरा डाक्टर को तो बुला ला । देख तेरे भाई मोहन को बुखार आ रहा है । बड़े दुःख के साथ मोहन की मां ने कहा ।

मुनि थोड़ी देर पश्चात डाक्टर को बुला कर लायी । डाक्टर ने नब्ज आदि को बड़े गौर से देखा और थर्मामीटर लगाया ।

कितना बुखार है, डाक्टर साहब ! मुनि की मां बोली ।

बस ९९ डिग्री, माता जी ! आप को फिकर करने की कोई जरूरत नहीं । गर्मियों में वैसे भी तापमान ज्यादा हो जाया करता है । मैं आपको दवाई दिये जाता हूं, उसे खिला देना, भगवान भली करेगा । बस फिर डाक्टर चला गया ।

दिन प्रति दिन मोहन का स्वास्थ्य गिरता ही गया और बुखार तेजी पकड़ता गया । डाक्टर ने बहुत कोशिश की, पर अन्त में हार कर चुप हो गया ।

—२—

पूर्णिमा का दिन था । मां ने व्रत रखा और भगवान से अपने पुत्र की सुरक्षा की प्रार्थना की । मुनि को भाई के पास बिठा कर स्वयं पड़ौस में श्री सत्यानारायण की कथा सुनने चली गई ।

थोड़ी देर पश्चात, मां ! अचानक ही मोहन के मुंह से आवाज़ निकलती है । मां कहां है, मुनि!

अभी बुलाती हूं, भैया ! मुनि मोहन से यह कह कर मां को बुलाने चली गई ।

मां ! तुम कहां हो मां ? मां, मां कहां हो ? मेरे पास आओ न मां ! मुझे छोड़ कर कहां गई हो मां ? मां, मां ! कहां हो ? जल्दी आओ मां ! मोहन कहता ही गया ।

आती हूं, मोहन! मां ने कहा और फिर मोहन के पास जा खड़ी हुई ।

हाय राम ! इतना गर्म शरीर । मोहन ! तुम्हें क्या हो गया, मोहन ! मेरे पुत्र मोहन ! बोलो न तुम क्या चाहते हो ? बोलते क्यों नहीं, ! मेरी आंखों के तारे ! मेरे रतन ! बोलो न । तुम्हारी मां तुम्हारे पास है । आंखें खोलो और देखो न मैं कब से तुम्हारे पास हूं । मोहन ! मोहन ! मां ने कहा ।

जब मोहन को होश न आई तो मां की ममता में लहर आई और उमंगें लेने लगी । उसने कहना शुरू किया—मोहन ! क्या तुम मुझ से रूठ गये हो, बेटा मोहन ! कुछ तो बोलो । मां से नहीं रूठते बेटे ! मैं कब से तुम्हारे पास बैठी हूं । आंखें खोलो न मोहन ! क्या तुम मेरा आज कहना नहीं मानोगे । मेरे एक संकेत मात्र से तुम मान जाते थे

और आज मैं तुम्हारे पास आकर बुला रही हूं तुम बोलते नहीं। क्या हो गया तुम्हें मोहन! जब मैं जरा रो पड़ती थी तो तुम भी रो पड़ते थे और मेरे आंसू पोंछा करते थे, पर आज मैं कितना रो रही हूं तुम कुछ नहीं कहते आदि आदि कहते-२ वह भी बेहोश हो गई। थोड़ी देर पश्चात जब उसे होश आई तो भी देखा कि मोहन उठा नहीं है, पर वह चुप बैठ गई।

तत्पश्चात मोहन कुछ हिलने डुलने लगा। मां को प्रसन्नता हुई, पर वह प्रसन्नता क्षणभंगुर थी और दुःख में परिवर्तित हो गई।

—३—

माँ! तुम आ गई। मेरे पास आओ। होश आने पर मोहन ने कहा। तुम्हारे पास ही हूं मोहन!

माँ! आज एक तारा आकाश से टूटेगा। तुम देखोगी न। रोना मत, यह तो रोजाना ही होता रहता है। रोज ही किसी का तारा टूट कर पृथ्वी पर गिरता ही रहता है। आज माँ मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो कि मैं तुमसे अलग होने वाला हूं और संसार में विचरण करने वाला हूं। तुम्हारा आशीर्वाद चाहिये, माँ! मुझे दो न आशीर्वाद, ताकि मैं खुशी खुशी इस लोक से गमन कर जाऊं। बस अब मेरी आत्मा और चोट सहन नहीं कर सकती। उसे बहुत सदुमा पहुंच चुका है। दो न आशीर्वाद मां!

तुम बहकी बहकी बातें क्यों कर रहे हो? कैसी चोट और कैसा सदुमा? यह तुम क्या कह रहे हो। होश में आओ, मोहन! मुझेधीरज बन्धाओ।

मां! मुझसे मत पूछो कि वह सदुमा क्या है? आज वही मेरी जान ले रहा है। मुझ से नहीं बताया जा सकता।

आखिर क्या बात हुई मोहन! मुझे बताओ तो सही ताकि मैं भी जान सकूं।

मुझे मजबूर मत करो। जब मैं कुछ भी नहीं कहना चाहता।

तुम्हें मेरी सौगन्ध, मोहन! बोलो क्या बात हुई, बोलो, बोलो, बोलो न। क्या बात है?

यदि तुम पूछना ही चाहती हो, मां! तो सुनो! आज से एक वर्ष पहले मैं अपने घर से मासी के घर आया था।

नमस्ते। मासी जी!

नमस्ते। मोहन! आओ बैठो। घर में सब कुशल हैं। माता-पिता राजी-खुशी हैं। मुन्नी का क्या हाल है?

सब कुशल है। आप बताओ बाल-बच्चे राजी-खुशी हैं। आपकी तबीयत का क्या हाल है।

ठीक है। मोहन!

मासी जी! मैं यहां नौकरी करने आया हूं और नौकरी मिल भी गई है। अब रहने के लिये जगह की जरूरत है। कोई मकान किराये पर ले दो।

क्या जरूरत है कमरे की। यहीं रहना और यहीं खाना-पीना।

अच्छा मासी जी!

इसके बाद मैं वहां आराम से रहने लगा और घर जैसा उनका काम भी करने लगा। उनकी सास व जेठानी भी उसी मकान में रहती थीं। उनसे भी मेरा प्रेम बढ़ गया था। वे भी मुझे अपने बेटे के समान देखने लगीं। इसी तरह कुछ दिन व्यतीत हो गये। इतना कह कर मोहन चुप हो गया।

चुप क्यों हो गये मोहन! उसकी मां ने कहा। यहां तक तो कुछ नहीं हुआ। तुम्हें उनका प्रेम मेरे जैसा ही मिल रहा था, फिर क्या बात है? बोलो न आगे।

मुझ से मत पूछो। यहीं से तो आगे वह घटना है। जिसकी चोट का दाग अभी तक मेरे हृदय पर है।

क्या तुम मेरी इच्छा अधूरी ही रखोगे। मेरी सौगंध को ठुकरा दोगे, मेरी आत्मा चैन नहीं पायेगी जब तक तुम बताओगे नहीं।

अच्छा! जैसे तुम्हारी मर्जी। एक दिन मैं उनकी जेठानी के बच्चों को पढ़ा रहा था कि इतने में···

दरवाज़ा मत बन्द करो मुन्ने ! खोल दो दरवाज़ा — मैंने कहा।

पर उस छोटे से लड़के ने दरवाज़ा बन्द कर ही दिया। मैं उनकी लड़कियों और लड़के को पढ़ा रहा था कि···

क्या वेश्याओं की महफिल लगा रखी है। वेश्याओं के समान एक दूसरे से वार्तालाप कर रहे हो। उनकी सास काली सर्पनी के समान फूंकार करती हुई बोली।

अच्छा मैं जाता हूं – इन्दू !

बैठो न भैया ! क्या बात हो गई ? वह तो हर एक के साथ ऐसा ही व्यवहार करती है। उस की बातों का गुस्सा मत मानना। पढ़ाओ न हमें।

नहीं ! मैं जाता हूं।

इसके बाद मैं सिर झुकाये अपनी मासी के कमरे में चला आया।

इन्दू कौन ? मां ने पूछा।

मासी की जेठानी की लड़की, मां !

तो इसमें क्या बात हो गई। यदि उसने वेश्या कह भी दिया तो क्या हो गया। वेश्यायें तो उनकी लड़कियाँ ही बनी। तुम्हें तो कुछ नहीं कहा।

नहीं माँ ! हर इन्सान को अपनी इज्ज़त प्यारी होती है। खाने का कोई भूखा नहीं होता।

हां ! खाना तो कोई एक दिन खिलायेगा या दो दिन। आखिर तो घर ही खाना है।

तभी तो मैं कहता हूं मां ! इज्ज़त का सवाल था। वेश्याओं के पास अच्छे आदमी नहीं जाते। मुझे उनसे ट्यूशन पढ़ाने की फीस नहीं लेनी थी, तो फिर मैं ऐसे ताने क्यों सुनता, माँ ? किसी के घर से नहीं खा रहे थे ! कौन होती थी वह मुझको कहने वाली ? कहने का तरीका होता है, मां ! यदि उसे हम पर बुरा सन्देह हो गया था तो वह बाद में शान्ति से पूराहाल पूछ सकती थी।

सन्देह की बात है। सन्देह तो ऐसी चीज है, बेटा ! कि पति अपनी पत्नी पर झूठा सन्देह कर उसे घर से निकाल देता है और फिर तो तुम पर व्यर्थ का सन्देह था। यह तो उसकी बुरी प्रवृति थी। जैसी खुद होगी वैसे ही दूसरों को समझती होगी। इस में तो कुछ बात नहीं मोहन ! धैर्य से काम लो और उस बात को भुला दो।

हो सकता है कि वह जैसी खुद हो वैसा ही दूसरों को समझे, पर माँ तुम नहीं जानती कि उसने मेरा कितना अपमान किया है। बात बात पर टोकना उसका नियम बन गया, पर मैं सब को सहता रहा। यह जो मैंने तुम्हें बात पहले बताई है, न सह सका, क्योंकि लगभग सभी रिश्तेदारों में फैल गई और मैं सिर ऊंचा ऊठाने योग्य न रहा। तबसे मैंने अन्य लड़कियों से बोलना भी छोड़ दिया, क्यों कि हर समय भय सा लगने लगा कि मैं यदि किसी लड़की से बात करूंगा तो दुनिया उसे और ही ढंग से न ले।

अच्छा छोड़ इन बातों को ! माँ ने कहा। क्या फिर इस के बाद तुम्हारी मासी ने उससे कुछ नहीं कहा ?

कहा। इन्दू के पिता से शिकायत की और उन्होंने मुझे बुलाया और वही बात कही जो कि इन्दू ने कही थी। मुझे फिर कुछ सन्तोष हुआ, पर दूसरे दिन फिर वही ताने सुनने में आये तो मेरे जख्म पर उन्होंने नमक का काम किया और वे ज़ख्म फिर से ताज़े हो गये।

इसके बाद – माँ ने कहा।

इसके बाद मैंने यह निश्चय कर लिया था कि एक अलग कमरा लूं और फिर उससे बातों से बदला लूं। कमरा तो मिल गया, पर उसका जवाब न दे सका। उसके बाद से आज तक मेरे दिल में चैन नहीं हुआ और मैं अन्दर ही अन्दर घुलता रहा। बाहर उस बात को किसी से प्रगट तक नहीं किया।

इतना कह कर मोहन बेहोश हो गया।

मोहन ! फिर तुम्हें क्या हो गया। होश में आओ मोहन ! मेरे साथ बातें करो। देखो फिर आँसू आ गये मेरी आँखों में। पोंछो न उन को आदि-आदि कहते २ माँ चुप हो गई।

—४—

मोहन को होश तो आई, पर पहले जैसी नहीं। अब वह लड़खड़ाते हुए शब्दों में बोला — माँ ! सुनो। अब मैं जल्द ही इस लोक से विदा होने वाला हूं। देखो न एक तारा धुंधला टिमटिमाता हुआ दिखाई दे रहा है। सूर्य भी अस्त होने जा रहा है। ऐसे समय में मैं उससे बदला लेने की क्यों सोचूं ? उसने तो मुझ से क्षमा नहीं माँगी, जाती बार मैंतो क्षमा मांगलूं। बुलाओ न उसको। जल्दी बुलाओ, नहीं तो मेरी आत्मा प्यासी ही रह जायेगी।

अच्छा ! बुलाती हूं।

मुन्नि ! जरा जाकर इन्दू की दादी को बुला ला। कहना भैया ने याद किया है।

अच्छा माँ ! मुन्नि ने कहा।

थोड़ी देर पश्चात् मुन्नि के साथ इन्दू की दादी आ जाती है और मोहन की हालत को देखकर उस की आँखों में आँसू आ जाते हैं।

आ गई मोहन ! माँ ने कहा।

मेरे पास बुलाओ ! मोहन बोला।

तुम्हारे पास ही बैठी है। माँ ने कहा !

इन्दू की दादी ! अब में जाने वाला हूं। मुझ से तुम्हारे खिलाफ कोई गलती हो गई तो माफ़ करना। हां ! उस दिन दरवाज़े वाली बात थी न। मैं अपनी सौगन्ध खा कर सच कहता हूं कि तुम्हें झूठा शक हो गया था। कोई बात नहीं। बड़े छोटों को क्षमा कर देते हैं। तुम भी क्षमा कर देना। बोलो क्षमा करोगी न। क्षमा करो।

इन्दू की दादी रो पड़ी।

सूर्य अस्त हो गया और तब मोहन का सिर भी मां की गोद से लुढ़क पड़ा और उसे खाली कर गया।

—५—

जिस तरह एक माली बड़ी-बड़ी आशाओं से वृक्ष लगाता है, सींचता है और खाद आदि डालता है। बढ़ते हुए वृक्ष को देख कर वह फूला नहीं समाता कि धीरे-धीरे उस पर फूल आने लग जाते हैं। उसे आशा बन्ध जाती है, पर कच्चे फल लगने से पहले या बाद में वृक्ष आंधी या तूफान से गिर कर नष्ट हो जाता है तो माली की सारी मेहनत पर पानी फिर जाता है और तब वह बैठ कर रोता है और जिस प्रकार पके हुए खेत पर किसान को बड़ी आशायें होती हैं, पर उसमें यदि आग लग जाये तो किसान की मानो कमर ही टूट जाती है और जीवन भारी लगने लगता है। ठीक उसी प्रकार आज मोहन की मां को अपना जीवन नीरस महसूस होने लगा और मानो उसकी कमर टूट गई हो; बाप का दांयाँ हाथ कट गया हो; भाइयों का एक वंश अलग हो गया हो।

मां फूट-फूट कर रोने लगी और जवान बेटे की मौत न सह सकी। वह कहने लगी — मोहन ! मुझे अपने पास न बुलाता, अगर तुझे इस तरह जाना था। मैं कितनी आशायें लेकर आई थी। तेरे भाई-बहन, पिताजी क्या सोच रहे होंगे ?

(शेष अगले अंक में पढ़िये)

वार्षिक विवरण ब्राह्मण सभा राजेन्द्र नगर (रजि०) सभा के वार्षिक उत्सव २३-४-६७ को पढ़कर सुनाया गया

❁ "श्री गणेशाय नमः" ❁

(श्री पं० शिवदत्त जी सलवान)

परम् आदर्णीय सभापतिजी, उपस्थित बन्धुओ, माताओ तथा बहनो !

आज परम् पिता परमेश्वर की असीम कृपा से हमें यह शुभ अवसर प्राप्त हुआ है कि हम सब यहां एकत्र हो कर श्री ब्राह्मण सभा राजेन्द्र नगर (रजि०) नई दिल्ली का पूर्ववत चौदहवाँ वार्षिक सम्मेलन मना रहे हैं। आप की सेवा में सभा का संक्षिप्त परिचय और गत वर्ष का कार्य विवरण उपस्थित किया जाता है। आप से प्रार्थना है कि आप ध्यानपूर्वक सुनने की कृपा करें।

१९४७ में देश विभाजन के फलस्वरूप जब ब्राह्मण जाति का सारा सामाजिक ढांचा टूट चुका था उस समय पुनः जातियता की टूटी कड़ियों को जोड़ कर परस्पर मेल-जोल द्वारा सम्बन्ध स्थापित करने के सउद्देश्य से १९५३ में श्री ब्राह्मण सभा राजेन्द्र नगर की स्थापना की गई। २७-६-५४ को सभा ने अपना वैधानिक रूप धारण करके जाति सेवा का बीड़ा उठाया और तभी से निरन्तर बड़ी संलग्नता और तत्परता से उस पवित्र कार्य को करती आ रही है।

उद्देश्य

श्री ब्राह्मण सभा का मुख्य उद्देश्य ब्राह्मण बन्धुओं को संगठित करके उनमें आत्मीयता की दृढ़ भावना उत्पन्न करना और उनकी उन्नति के लिए प्रयत्न करना है। इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए सभा पारस्परिक परिचय आध्यात्मिक शिक्षण, वैवाहिक सम्बन्ध स्थापना, चरित्र निर्माण, हवन यज्ञ करना कराना तथा आर्थिक सहायता देना आदि शुभ कार्यों के करने में सदा तत्पर रहती है।

प्रत्येक मास के प्रथम रविवार को सभा की साधारण बैठक श्री ब्राह्मण सभा भवन में होती है और मास के शेष रविवारों की बैठकें उन ब्राह्मण बन्धुओं के पवित्र घरों में होती हैं जो सभा को आमंत्रित करते हैं। इन बैठकों में हवन, ईश्वर प्रार्थना, कीर्तन और विद्वता पूर्ण प्रवचन आदि का बड़ा पवित्र और रोचक कार्य-क्रम प्रस्तुत किया जाता है। हर वर्ष सभा बड़े समारोह से अपना वार्षिक सम्मेलन मनाती है। जिस में बड़े-बड़े विद्वान, संगीताचार्य वा सम्मानीय महानुभाव पधार कर उत्सव की शोभा बढ़ाते हैं। वार्षिक

सम्मेलन के दिन प्रायः सभा द्वारा ब्राह्मण बालकों की खेलें करवाई जाती हैं। प्रतियोग्यता में जीतने वालों को पुरस्कार दिये जाते हैं। आज सभा का चौदहवां वार्षिक सम्मेलन है और सभा अपने अस्तित्व के पन्द्रहवें वर्ष में पदार्पण कर रही है।

गत वर्ष ब्राह्मण सभा भवन (सलवान स्कूल) में साधारण बैठकें और सभा द्वारा किये गये विशेष कार्य ब्राह्मण बन्धुओं के घरों में ३० और कार्य-कारिणी की १० बैठकें सम्पन्न हुई। जिन बन्धुओं ने सभा को आमन्त्रित करके अपने पवित्र गृहों में सभा द्वारा हवन, कीर्तन और प्रवचन आदि करवा कर सभा को अपने कार्य-क्रम चलाने के सुअवसर प्रदान किये हैं। सभा उनकी आभारी है।

विशेष कर १-१-६७ को सनातन धर्म मन्दिर शंकर रोड में श्री वी डी राजपाल जी ने सभा द्वारा हवन कराकर सनातन धर्म मन्दिर को १००१ रुपया मन्दिर निर्माण के लिये दान दिया। ४-२-६७ को रमेश नगर में श्री मोती नाथ जी संस्कृत पाठशाला के विद्यार्थियों को पुस्तकें खरीदने के लिये विशेष सहायता दी।

पूसा रोड में राधा स्वामी सत्संग में जाने के लिये तथा श्मशान भूमि तक शव यात्रा के लिये डाक-तार विभाग अधिकारियों से छोटे मार्ग के लिये दिल्ली नगर-निगम से पत्र व्यवहार द्वारा और स्वयं मिल कर स्थान प्राप्ति के लिये अनुरोध किया गया। ईश्वर की कृपा से उस कार्य में सफलता प्राप्त हुई।

हायर सैकन्डरी परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर राजेन्द्र नगर की बालिकाओं को जिन्हें दूर यूनिवर्सिटी एरिया में उच्च शिक्षा के लिये प्रवेश मिला था। बसों पर दूर आने जाने में बड़ी कठिनाई होती रहती थी। सभा के प्रयत्नों द्वारा उन बालिकाओं को विश्व-विद्यालय के अधिकारियों ने स्थानीय जानकी देवी कालेज में प्रवेश देने की अनुमति प्रदान कर दीं और इस प्रकार राजेन्द्र नगर करोल बाग की बालिकाओं को दूर तक बसों पर आने जाने की कठिनाई से छुटकारा मिला।

शंकर रोड के साथ वाले क्वाटरों को गिराया न जावे। हमारे १८-२० वर्ष से घनिष्ट सम्बन्ध फिर से टूट जायेंगे। कारपोरेशन तथा D. D. A. वालों से प्रार्थना की गई।

जब से हमारी सभा बनी है सलवान स्कूल के कमरे, ब्रान्डे तथा पार्क आदि का पूर्ण रूप से सभा प्रयोग करती आई है और कर रही है। ब्राह्मण असहाय बालकों को पुस्तकें तथा फीस माफ करते आये हैं। अतः न उत्तीर्ण होने वाले बच्चे जिन को कानूनी तोर पर निशुल्क पढ़ने का अधिकार नहीं होता। सलवान जी अपने किसी दूसरे फन्ड से उन्हें सहायता दिलवाते रहते हैं। जिन में ब्राह्मण बालकों का विशेष ध्यान रखा जाता है। तथा ब्राह्मण बन्धुओं को उनकी कन्याओं के विवाह के अवसर पर बाहर से आने वाली बरात को ठहरने के लिये निःशुल्क स्थान प्रदान करने की कृपा करते हैं।

आप को यह सुन कर प्रसन्नता होगी कि सभा के संरक्षक श्री शिव दत्त जी सलवान ने अपनी परम दान वीरता तथा उदारता का परिचय देते हुए अपने परम पूज्य स्वर्गीय पिता श्री गिरधारी लाल जी सलवान की पुण्य स्मृति में एक निर्मित कमरा अपने पब्लिक स्कूल के पास सभा को दान में दे दिया है। जिसका नाम "ब्राह्मण सभा भवन" रखा गया है। सभा श्री सलवान जी की बड़ी आभारी है और उनका शत-शत धन्यवाद करती है।

कमरे में प्रवेश का शुभ महूर्त १८-९-६६ को श्री रामायण जी के अखण्ड पाठ और गणपति नव-

गृह पूजन से हुआ। श्री शिव दत्त जी सलवान इस अवसर पर अपने कार्यवश दिल्ली में उपस्थित नहीं थे। अतः उन के अनुज श्री रमेश दत्त जी सलवान ने इस अवसर पर विधि-पूर्वक पूजन आदि स्वयं किया और कमरा दान करके सभा को दिया। गत किया और फिर सभा भवन में पधार कर सब ब्राह्मणों को कमरे में एकत्रित करते हुए अपने आप को भाग्यशाली समझ कर करवद हो कर सब को प्रणाम करते हुए १०१ रुपया दक्षिणा के रूप में भेंट किया। सभा ईश्वर से प्रार्थना करती है कि

तत्पश्चात् जब श्री शिव दत्त जी दिल्ली वापिस आये तो सभा के सदस्य उनका धन्यवाद करने और आर्शीवाद देने के लिए उनकी कोठी पर गये। आपने बड़ी श्रद्धा पूर्वक सब ब्राह्मणों को दूध आदि से जलपान मिष्ठान करा कर उन का हार्दिक स्वागत किया

सलवान बन्धुओं की दीर्घ आयु करे और आप का परिवार फूले-फले और उनकी समृद्धि में हर प्रकार की उन्नति हो।

कई बार सलवान जी जलपान का खर्च देते

रहे हैं प्रथम सभा सम्मेलन पूजनीय स्वर्गीय श्री गिरधारी लाल ज़ी सलवान ने अपने सब से पहले हमें जलपान के खर्च का दिग्दर्शन कराया था जो आज तक चालू है। भगवान् की कृपा से उन की यह यादगार हमेशा चलती रहे।

सभा ने ब्राह्मण सभा भवन में स्टील की एक अलमारी ४०८ रुपये में खरीद कर रखी है जिस में सभा के बर्तन और सामान रखा है। भवन में लगभग १२५ रुपये में बिजली लगाई गई है। श्री दौलत राम जी ईस्सर ने एक पंखा अपने स्वर्गीय पिता श्रीमान् पं० हरबन्स लाल जी ईस्सर की पुण्य स्मृति में दान दिया। इससे पूर्व आप सभा की आर्थिक सहायता करते रहे तथा एक बार सम्मेलन में जलपान की सेवा का सारा खर्च सहन किया। सभा ईस्सर जी की बड़ी आभारी है और ईश्वर से उन की हर प्रकार की उन्नति के लिए प्रार्थना करती है।

'ब्राह्मण सभा भवन" में सभा द्वारा धार्मिक लाइब्रेरी खोलने का प्रस्ताव स्वीकृत होने पर पं० फकीर चन्द जी शास्त्री ने लाईब्रेरी के लिए सामवेद और अथर्वेद देने का वचन दिया है। सभा उन का धन्यवाद करती है।

श्रीमान् पं० कन्हैया लाल जी पुन्ज ने प्रारम्भ से बर्तन खरीदने में सभा को पूरा सहयोग दिया। १९६२ के सभा द्वारा आयोजित महाचन्डी यज्ञ में भी आप ने उदारता दिखाई। ५०० सूचियों की छपवाई और पिछले वर्ष के अधिवेशन का सारा खर्च प्रसाद आदि का प्रदान किया। सभा आप जैसे दान वीरों की बड़ी आभारी है। सभा भगवान से आप की कार्य-कुशलता, दीर्घ आयु जन-धन सम्पन्नता के लिये हृदय से प्रार्थना करती है।

सभा इन महानुभावों की अत्यन्त आभारी है जिन्होंने विशेष रूप से दान देकर सभा को अनुगृहित किया :—

निवेदन

आप के जाति प्रेम को देखते हुए कुछ महीनों से "वशिष्ट" आप की सेवा में पहुंच रहा है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप इसे आदर की दृष्टि से देखते हैं। निवेदन है कि आप इसकी ग्राहकता स्वीकार करें और इसका वार्षिक शुल्क विशेष ११ रु० या साधारण ५ रु० शीघ्र ही दस्ती अथवा मनीआर्डर द्वारा भेजने की कृपा करें।

सोमनाथ तेजपाल
फर्म बेलीराम सोमनाथ,
चावड़ी बाजार, दिल्ली-६.

1.	श्री पं० कन्हैया लाल जी पुन्ज	१, कीलिंग रोड	२२७–५०
2.	श्री ,, दौलत राम जी ईस्सर	एच-३०२, राजेन्द्र नगर	२१०–००
3.	,, ,, शिव दत्त जी सलवान	४७, पूसा रोड	१०१–००
4.	,, ,, बाल कृष्ण जी सूदन	११-ए/२१	३२–००
5.	,, ,, हंस राज जी भारद्वाज	२६/७	२५–००
6.	,, ,, ज्ञान चन्द जी मनन		२५–००
7.	,, ,, बसन्त लाल जी जेतली	४७/१६	२५–००
8.	,, ,, रमेश नाथ बख्शी	३/३७	११–००
9.	,, ,, प्रधान सनातन धर्म सभा	राजेन्द्र नगर	११–००
10.	,, ,, वी. डी रामपाल	२८/३५	११–००
11.	,, ,, मास्टर बलवन्त राय	डी. एस. ३६४	११–००
12.	,, डा० बी एन. बाली	एच ३०१	१०–००
13.	,, पं० हीरा लाल (कनटीन वाले)	डी-एस ६१६	१०–००
14.	,, ,, चिरंजीव रमेश दत्त जी सलवान	४७, पूसा रोड	१०–००
15.	,, ,, किशोर चन्द जी भारद्वाज	ज़ैड-१, राजौरी गार्डन	११–००
16.	,, ,, प्यारे लाल जी	६१२१,	११–००

सभा की आय के चार साधन हैं:– १. वार्षिक चन्दा २. विशेष दान ३. बर्तनों द्वारा आय ४. बैंक में रखे रुपये पर व्याज ।

व्यौरा हिसाब १९६६–६७

आय		व्यय	
पिछला कैश	3–15	बैंक फिकस्ट डीपाजीट खाता	5287–98
भवन खाता	6129–20	बैंक सेविंग खाता	1390–47
बर्तन खाता	252–24	दस्ती खाता	41–60
चन्दा खाता	344–75	स्टेशनरी खाता	13–84
हवन खाता	159–73	मुतफर्क खाता	74–80
दान खाता	616–75	सहायता खाता	30–00
		दरी खाता	54–00
		पुरस्कार खाता	29–56
		ब्राह्मण बजट खाता	5–45
		फर्नीचर खाता	427–65
		वाचनालय खाता	107–12
		बाकी कैश	43–35
	7505–82	कुल	7505–82

इस धन राशि के अतिरिक्त सभा के पास निजी चल अचल सम्पति के रूप में १०० का सेट बर्तनों का है जिस में कुल छोटे बड़े ६५० बर्तन हैं। एक वेदी, एक स्टील की अलमारी, बिजली का एक पंखा लगा हुआ। ५ दरियाँ भी हैं। यह बर्तन, वेदी आदि विवाह के अवसर पर ब्राह्मण बन्धुओं के अतिरिक्त दूसरे भाई भी प्रयोग के लिये ले जाते हैं।

सभा के प्रधान बाल कृष्णजी गोस्वामी, मन्त्री हीरा लाल जी चनन, सहायक मंत्री कमल नैन जी वैद्य, उप प्रधान बद्रीनाथ जी जेतली के. एस. भास्कर, आत्मस्वरूप जी वैद्य कोषाध्यक्ष. पं०

धन्यवाद व बधाई



१. अखिल भारतवर्षीय ब्राह्मण महासभा के आजीवन सदस्य श्री पं० जे एन. शर्मा, एम-६६ कीर्ति नगर. नई दिल्ली के सुपुत्र चिरंजीव श्री विरेन्द्र कैलाश इंजीनियर, बम्बई का शुभ विवाह महासभा के प्रतिष्ठित सदस्य श्री पं० के. सी. दवेसर, डिप्टी जनरल मैनेजर, टेलीफोन्स, ९४, रवीन्द्र नगर, नई दिल्ली की सुपुत्री पुनीता से गत २७ मई को सम्पन्न हुआ। इस शुभ अवसर पर पं० जे. एन. शर्मा ने "वशिष्ट" के सहायता कोष में ५१ रुपये दिये। हम शर्मा जी का हार्दिक धन्यवाद करते हुए उन्हें बधाई देते हैं और परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि वर तथा वधु चिरकाल तक सुख-पूर्वक जीवन व्यतीत करें।

२. महासभा के सदस्य श्री पं० रघुविन्द्र नाथ भास्कर, डी-८७, फतेह नगर के सुपुत्र चिरंजीव कुलभूषण, एम. ए., का शुभ विवाह श्री पं० आर. सी. भारद्वाज, जलंधर निवासी की सुपुत्री सुदर्शन से १३ जून को हुआ। इस शुभ अवसर पर भास्कर जी ने सात रुपये "वशिष्ट" के सहायता कोष में दिये। हम हार्दिक धन्यवाद करते हुए उन्हें बधाई देते हुए परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि वर तथा वधु चिरकाल तक सुख-पूर्वक जीवन व्यतीत करें।

सोमनाथ तेजपाल, मुख्य प्रबन्धक "वशिष्ट"

बसन्त देव जी शास्त्री (विद्यावाचस्पति) श्री राज पाल जी कुमारिया, श्री विश्व नाथ जी, सेनुपाल जी ने विशेष सेवा की। सभा उन की हृदय से आभार प्रगट करती है। इन महानुभावों के अतिरिक्त सभा अपने अन्य सदस्यों की भी आभारी है जो वर्ष भर सभा के हर काम में सहयोग देते रहे।

अंत में सभा यहाँ पधारे हुए परम-पूज्य सर्व-शास्त्र निष्णात विद्वत् वृन्द के प्रति बड़े सम्मान के साथ अपना आभार प्रगट करती है जो कि जङ्गम तीर्थ रूप हैं और जिन्होंने यहाँ दर्शन देकर हमें कृतार्थ किया।

सभा अपने संरक्षक श्री शिव दत्त सलवान का फिर धन्यवाद करती है। जिनकी छत्र-छाया के नीचे वह हर प्रकार से उन्नति कर रही है। भविष्य में भी इन्हीं के बल पर सभा आशावादी है। ईश्वर उनके सब परिवार में उन्नति करे और वह शतायु हो।

अंत में सभा आप सब सभासदों का धन्यवाद करती है जिन्होंने सनातन कार्य-क्रम में अपना अमूल्य समय देकर उत्सव की शोभा को बढ़ाया।

बालकृष्ण गोस्वामी — प्रधान
हीरा लाल चनन — मन्त्री

श्रीः

श्री राम जय राम जय जय राम

रामायण सत्संग कार्य-क्रम

दिनाँक : प्रत्येक प्रदोष व्यापिनी त्रयोदशी

ता० ५–७–६७, १९–७–६७, २१–७–६७ व्यास पूजा

साँयकाल : ७ से ८ तक षोडशो पचारैः त्रिगुणेश्वर पूजनम्

साँयकाल : ८ से १० तक रामायण सत्संग

व्याख्यान कर्ता : श्री रुद्र देव पाण्डेयः (रा० च० मा०), श्री राजेन्द्र कुमार गोस्वामी (र० च० मा०)

स्थानः- श्री त्रिगुणेश्वर महादेव मन्दिर

ग्राम सराय काले खाँ निकट निजामुद्दीन रेलवे स्टेशन, नई दिल्ली-१३. फोन : 611221

निवेदक :

श्री परशुराम जयन्त्युत्सव समिति दिल्ली। फोन : 611221

वैद्य बृहस्पतिदेव त्रिगुणा, प्रधान — श्री नित्यानन्द दत्त, मन्त्री

नोट :— निम्नलिखित महानुभावों की उपस्थिति एवं प्रबन्ध में सर्व-प्रथम रामायण सत्संग दिनाँक १९-६-६७ को सोत्साह सम्पन्न हुआ।

श्री राज कुमार अग्रवाल श्री पं० प्रेमनाथ श्री बाल किशन कौशिक श्री पं० खुशीराम
श्री नन्दलाल कौशल श्री पं० किशन चन्द श्री मदन गोपाल ठेकेदार श्री पं० नन्दलाल शास्त्री
श्री पं० मुन्शी राम जी चौ० सिरिया जी श्री शिवराज जी श्री सोहन लाल श्री मोहन लाल
श्री पं० करतार चन्द श्री शिवचरण श्री अरविन्द्र कुमार गोस्वामी श्री नरेन्द्र कुमार त्रिगुणा
श्री रवीन्द्र कुमार त्रिगुणा मिस विनोद कुमारी श्री जोशी जी श्री पं० खुशी राम
श्री ज्योतिषाचार्य समिति एवं सर्व ग्राम निवासी।

EXTRACTS FROM CHANAKAYA

(By SURINDER KUMAR SHARMA)

CHANAKAYA is said to be the first Indian economist. He was not only a great economist : he was great sage and administrator. His universally proclaimed 'Arthashastra' is bedecked with such tenets aud principles which hold their appeal and are highly valued even today. Here we bring to our readers some of the extracts from that illustrious book. These extracts deal mainly with the role and personality of a rulers and the government departments which functioned under Chandragupta Maurya.

1. The king should first have complete control on his person and thereafter win over his enamies by his high charactor and excellent administration.

2. It is his duty to look after his subjects and not torture them. Only he is a kind king who treats his subjects as his children.

3. He should be even vigilant because a little negligence or minor mistake on his part can bring about a catastrople.

4. Dividing the day in sixteen parts, Chanakaya lays down what a king should do in each part. In the first part he should think over mattres relating to country's economy and security. Subsequently, he should receive petitrons from the public and decide cases. He should then receive visitors and accept presents. He should consult his council of ministers. He should inspect various wings of his army and talk his to army commanders. He should receive from officers of intelligence department.

At another place in his Artha Shastra Chanakya outlined with details the eighteen government departments, their respective functions, the strength of each department and the salary payable to each employee. He has laid utmost emphasis on the customs and Revenue Department. We are told that one-forth of the agricultural produce was changed as land revenue; royalty was taken on mines; salt and pearls were subjected to tariff. Toll tax was one of the main sources of income. Wine shops and brothels had to pay heavy taxes. Arms and ammunition, asmours, gold, silver foodgrains, cattlle and precious stones were exempted

from all types of duties; so were goods purchased for religious functions, marriages, child-birth etc. Traders crossing over without valid passes had to pay double the duty.

The Irrigation Department had to administer a net work of canals and big ponds. A complete record was maintained of the land measurements. The Department of shipping and navigation looked after the safety of passengers travelling by sea or rivers because such travel was quite common in Cahandragupta Maurya's time. Trade relations were established with China, Arab, Iran etc.

Public works Department looked after roads and other public amenities. The roads were in a good condition. There were separate roads for traffic, pedestrians and for going to cremation grounds. Roads for pedestrians were four feet wide while others had a width of 32 feet. The most famous road ran from Patliputra (Patna) to the north-west border (Taxila). All the roads had milestones and trees.

Co-operative societies were also not unknown in those days. There was a separate department to government them. These societies used to help to agriculture, trade, handicrafts ete. The management of cities was entursted to municipal committees which were responsible in their respective areas for sanitations, water supply, parks, cremation grounds etc. The municipal committee of Patliputra had thirty members and six sub-committees. These subcommittes had their own sphere of working and their fnnctions compiled of handcra its receiving entertaning foreign visitors maintaining statistics regarding births and deaths, trade of factories, collection of toll tax etc.

Besides local panchayats which disposed of cases in small villages, there wero two types of courts, each having six judges. Three of them were scholars of 'dharma shastra' and 'neeti shastra' and the other three used to be well conversant with local customs. An appeal could be made to the king is privy council against the verdict of these courts.

In famine stricken areas, people were supplied foodgrains from government stocks. Relief works were opened to provide work to people. Countributions were realised from the rich and distributed among the poor.

A Fool must now and then be right by chance.

—●—

The Greatest man in history is the Poorest.

—●—

Out of sufferings, comes the serious mind, salvation, the greatful heart and out of endurance, fortitude.

—●—

Injury is much soon forgotten than insult.

Need of Public Cooperation in National Development

(Banwari Lal 'Ageet')

THE plan has been called a democratic plan which can be implemented only through the public co-operation and public opinion. The people should cooperate among themselves with different functionaries of the government. This is the only safe means throuh which any country can make progressive plans for the future. The plan ought to be for the masses and without them the plan has no importance, In a democracy especially the accent of the people has greater significance than the oppressive aptitude of the state. Public co-operation in every sphere of social, political, religeous, and economic life of the people is the rudimentary need for the success of democratic planning. Proper planning is the backbone of democracy. It reduces eeonomic disparities and provides all with equal opportunities.

Implicitly the public must be educated so that it may undertstand the plan properly and correctly. This lack of educating the people is to be carried and through the cooperation of the press, the creative writers and sophisticated artists. It acts as a link between the government and the public.

The national development will suffer if the people find that the administration is corrupt and that the administrative mechinery fails to win the confidence of the public. For proper implementation of any plan the public and the government should be free from all kinds of complexes. Public eooperation is indispensable for the success of any plan. In order to win the public cooperation and confidence, the government should see that the local plans are quickly and effectively implemented. This will enable individual and groups to make their maximum contribution.

The public cooperation is fruitful only if the rule of the government is cooperative. If the administration is corrupt and defective, the public favour cannot be sought. On the other hand the help of the public is needed o remove inefficiency and corruption of the admini-

stration. There should be mutual understanding for implementing any plan between the government and the governed. Administrators are first helpers of the masses struggling hard for their own betterment and progress.

Public cooperation is needed not only in the development of social welfare but also in the growth of village industry. Community development and technical advancement cannot be achieved without public cooperation. It should be the endean of both the publlc and the administrators to enlarge public cooperation as much as possible. For prompt national development agriculture and industry are to be given more progressive acceleration. For this labour cooperative's are needed for the quick implementation of irrigation projects. On the top of it public should extend its genuine cooperation willingly and voluntarily.

The function of the genius, wise and the literate public in implementing the plan effectively cannot be deviced. The government should provide adequate resources to all in order to keep a high standard in education. In nut shell I can say that public cooperation cannot be refused in any branch of national development. Public help is the part and parcel of national glory, national integration and national development.

—✻—

BATTLE ON ALL FRONTS

It took thousands of years, untll 1966, for India's population to reach the 500 million mark. But at the prsent rate of growth, the populatlon will double itself within the next 29 years, Owing to control over communicable diseases and improved health services the death rate has from 27 per thousand per year in 1951 to less than 16 today. But the birth rate continues to be around 40 to 41 per thousand.

The population problem is the most pressing one which India is facing at the moment. By the time you finish reading this article (assuming it takes you five minutes) 105 babies would have been born. Each minute brings 21 new lives to join 5 0 million who are a drain on the nation's limited food stocks, financial and material resources.

As is well known the aim of the government is to reduce birth rate from 40 to 25' if not 20 perthousand per year in the next ten years. It is revealed that the government is approaching the employees working in different ministries and is also asking the state government to do the same. The oral pill is already approved and a factory is being set up to manufacture condoms. The loop is already being manufactured and a private firm has already started a factory in Maharashtra to manufacture the pill.

In a recent interview to the Hindustan Times, Dr. S Chandershekhar, Union minister sounded very hopeful and optimistic· The hope, as he explained, was due to :—

A dedicated and multipronged attack now to check the baby boom—such an approach was lacking in the past;

Various tax relief and incentive proposals to allure people limit the size of their families are beingfinalized; and

Liberalizing the law regarding abortions will go a long way to prevent the birth of the unwanted child.

The lead must come from the educated urban class and public leaders. This he effectively underlined by pointing out why family planning motivation had differed from region region.

The following incentives are on way :—

Government is not going to legalize abartion. All they intend to do is to liberalize the present very strict law. The recommendations of the Shantilal Shah Committee have been sent to the States and an enabling Bill may be introduced in the next session of Parliament.

Some more incentives for small families are being worked out and government hoped to come forward with these in a couple of monthes Government employees both of the Centre and the States are at present principal targets for the family planning programme.

The injectible contraceptive which gives immunity to a male for two or three years is now being tried out in California; if it is proved useful, we will adopt it. Meanwhile not much progress has been reported on the peaoral contraceptive of Dr. Sanyal.

—×—

(To be continued)

Till I End My Song

K. L. SEHGAL

MY mind travles everywhere,
But fetches nothing,
Poor instinct glazed for luxuries.
And loved them; longed them, so
Got them too; but unconsciously
Whenrever it jumped to aspire; the illusory clamour
Cheated and the poor lass is again
Fallen on the muddy-chips choked and forked.
I hath a mind which I travelled all along,
But to my satisfaction bore nothing so long,
Sweet 'life' stay till I end my song:
Poor lasses smoke,
The smoke runs in and out;
A faltered ugly gas bursts zinc cymbale
And leaves the Smoky nose smashed :
Turns all lungs into ashes.
When you cross such an ash dung
Cry, ah ! all ash is but all lung;
Burnt, caviled, deployed of no use,
An 'ash for ash's sake' or so long,
To cafe stripped we our lips
The china cups tinkle cymbals,
Out goes a heart-sheathing ring :
The fob and coquette listen.
The sea-like liquid foam recurs,
The distorted spoon spills first the taste.
The eloped faces sink in whispers:
Which melt at last in the mute coffers.
The gossip goes, the hearts engeander night-long,
Sweet couple 'rehearse till I end my song.
Chivalrous Knight
Hold the everglorious field.
With the Immortal shield
Protect : Thy Nation standest not on 'cups'
But hinging Industry, and Natural Plenty.
Do thou go and guard so long,
Sweet Knight eternally flourish till I end my song.

Last Page by the CHIEF EDITOR

K. C. BHARDWAJ

IT gives me an immense pleasure to announce that the Committee appointed by the Executive of All India Brahman Sabha on 11 June 1967 has made a considerable headway. The Committee in its meeting on 16 June 1967 unanmously decided to hold a Vishav Kalyan Yajna in the Capital sometime in Sept. 1967. It also decided to arrange on this occasion series of lectures on Patriotism, Character Building and sense of brotherhood which will go a long way to add beauty to the colour. More details about this historic Yajna will be announced in the subsequent issue of 'Vashist'. Needless to say our September issue will be 'Vishav Kalyan Ank'.

For the time being I must congratulate the organisers for their determination, sense of duty and above all their courage to achieve this purpose in the shortest possible time. I was glad to note that all members of the Committee are full of confidence, which is a touchstone of success. As the legend goes:—

At the foot of the Himalayan ranges dwelt Suka the learned Rishi and to him came from far and wide many seekers after knowledge and truth. To him there came one day a thoughtfull man with a question in mind and he asked the Rishi 'Of all things on earth what takes the longest to grow?' Suka mused a while and then answered 'Confidence'.

At this time I quote another Western Scholar Dr. Norman who once said 'with the correct mental attitude, you can overcome all the difficulties of life.' This is possible for every human being, with the help of God, when he belives he can. You can have this strong feeling of victory even in the midst of disaster. This is what makes people great. Such people can fight, struggle and achieve and, it may be, see every thing swept away, and yet never let go. They start anew, strong in the knowledge that nothing can defeat them. It is a tremendous possession, this mental slant.

It occurs to me that my colleague Mr. Dev, who initiated discussion on varrious problems likely to be faced by the committee, is greatly inspired by these sages whose saying always guided the troubled soul. When I left the meeting his words that we can achieve whatever we want with the correct mental attitude and confidence were still echoing in my ears. Now that I am releasing this editorial to the press I am quite clear in my mind that my colleague is absolutely correct that given moral support of our collegues, there is no reason why we should not succeed, particularly when the cause is noble. I have firm faith that we will agree on this whatever our opinion on other problems.

The committee also gave me the responsibity of becoming Chairman of the Reception Committee which I have gladly accepted to strengthen his hands. I feel confident that it will not be difficult to enrol 500 members of Reception Committee who will contribute at least Rs. 11/- each which may be diposited with Shri Fateh Chand Vasudev J-377 New Rajinder Nagar, New Delhi against regular receipt.

It adds to my pleasure to note that the Vishav Kalyan Yajna shall be a "Sarvajauile" (belonging to all) performance. All people, irrespective of creed or faith can and shall join in this noble task where Almighty shall he earnestly approached to ameleorete the ordeals and cotastrophe India and the world are facing.

TEJPAUL

BOX STRAPING MACHINES

★ इन मशीनों के प्रयोग द्वारा माल को हानि होने से बचायें।

★ यह मशीन उत्तम दर्जे की और प्रयोग करने में अत्यन्त सुविधा-जनक है।

★ इसके प्रयोग से आप माल को रेलवे आदि कार्यालयों में उनकी जिम्मेदारी पर भेज सकते हैं।

★ इन मशीनों की एक वर्ष तक बेकार होने की जिम्मेदारी फर्म पर है।



जिम्ती लोहे की तार, सहायक तार, सख्त चमकीली तार, नर्म लोहे की तार, कांटेदार तार, टिनसील, जिस्ती पानी के पाइप तथा उसका सामान लोहे की जाली, चारा काटने की छुरियां आदि हर प्रकार के सामान के लिए लिखें या मिलें।

फोन { २६२६३३ / २२१३६२

बेली राम सोम नाथ

माल के आयात एवं संग्रहकर्ता तथा निर्माता :

३५४५, चावड़ी बाजार, दिल्ली-६

Edited & Published by Som Nath Tejpal 104-A, Kamla Nagar, Delhi, Manager of
... Bazar Sita Ram, Delhi Phone 26576...